।। श्रीगौरांगविर्धुजयति ।।

‘हरे कृष्ण महामंत्र’ जप व उच्च संकीर्तन विधान

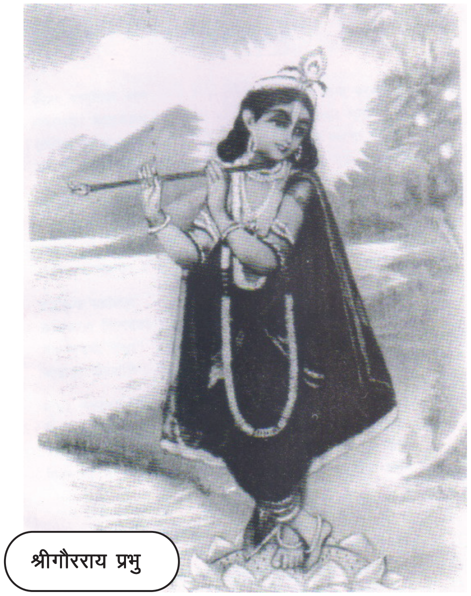
श्रीनवद्वीप धाम निवासी
नामविज्ञानाचार्य
श्रील कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद विरचित

सम्पादक व प्रकाशक

श्रील कानुप्रिय गोस्वामी जी व अखण्ड ब्रजवासनिष्ठ भजननिष्ठ संत की प्रेरणा से ही सम्पादित व प्रकाशित कश्चित् द्वयजन के द्वारा

विषय–सूची

सपरिकर श्रीश्रीनिताईगौर व श्रीश्रीराधाकृष्ण की वन्दना



श्रीगौरराय प्रभु

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुत पद,
कमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च।
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण,
रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।।
साद्वैतं सावधूतं परिजन,
सहितं श्रीकृष्णचैतन्यदेवं।
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण,
ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।

मैं अपने दीक्षागुरु के श्रीचरणकमलों की वन्दना करता हूँ, शिक्षा गुरुगण एवं वैष्णवगण की भी मैं वन्दना करता हूँ। अग्रज श्रील सनातन गोस्वामिपाद सहित श्रील रूप गोस्वामिपाद व श्रील रघुनाथदास गोस्वामिपाद व श्रील रघुनाथ भट्ट गोस्वामिपाद आदि समस्त परिकर की वन्दना करता हूँ। श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु व परिकर सहित श्रीकृष्णचैतन्यदेव की वन्दना करता हूँ। श्रीललिता-श्रीविशाखा समन्वित समस्त परिकर वर्ग सहित श्रीश्रीराधाकृष्ण की भी वन्दना करता हूँ।

प्रेम युगल श्रीश्रीराधागोविन्द व करूणावरूणालय श्रीश्रीनिताईगौर की असीम अनुकम्पा से यह श्रीग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। इसमें 'हरे कृष्ण महामंत्र' से सम्बन्धित अधिकांश उद्धरणों, साक्ष्यों व प्रमाणों का संकलन किया गया है।

मुझे एक वर्ष पूर्व एक महान् भजनानन्दी संत ने 'हरे कृष्ण महामंत्र' के सम्बन्ध में ग्रंथ प्रकाशित करने की प्रेरणा दी। मैंने उनसे पूछा कि- ''आपके हृदय में यह ग्रंथ प्रकाशित करवाने की इच्छा क्यों हो रही है?'' तब उन्होंने बहुत ही सरल हृदय से विनम्र वाणी में मुझसे कहा-

''देखिये, कुछ लोग इस महामंत्र का उच्च स्वर से कीर्तन करने का विरोध करते हैं, और अब तो ऐसी स्थिति हो गई है, कि कुछ लोग व्यास गद्दी पर भी बैठकर यही बात कहने लगे हैं और हजारों लोगों को भी सटीक सिद्धांत नहीं बतलाकर भ्रमित कर रहे हैं। यह कितने दुःख की बात है? सच कहूँ, तो यह बात मैं भक्त लोगों से सुनता हूँ, तो मन में भारी पीड़ा होती है।

अरे, नवद्वीप व ब्रज के सभी गोस्वामिवृन्द एवं बाबाजी 'हरे कृष्ण महामंत्र' का ही जप-कीर्तन कर रहे हैं। सम्पूर्ण विश्व के लोग इसी महामंत्र से आकर्षित होकर नाच-गा रहे हैं। वे लोग भी ऐसा सुनेंगे, तो क्या उन करोड़ों लोगों के हृदय को ठेस नहीं पहुँचेगी! निश्चित ही पहुँचेगी, इसीलिये मैं तुमसे यह कह रहा हूँ, कि 'हरे कृष्ण महामंत्र जप व कीर्तन विधान' नामक ग्रंथ का पुनः प्रकाशन करो, जो आज से ५५ वर्ष पूर्व श्रील कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद ने लिखकर

प्रकाशित किया था। इस ग्रंथ के प्रकाशन की अत्यधिक आवश्यकता हो गई है।''

इन महान् भजनानन्दी संत के श्रीमुख से ऐसे भावुक वाणी सुनकर मेरा हृदय विचलित हो गया और मैंने तत्क्षण ही इस ग्रंथ को प्रकाशन करने का विचार कर लिया। मुझे तो ऐसा लगता है, कि इन्होंने मुझको प्रेरणा दी है और इन पर श्रील कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद की विशेष कृपा रही होगी, तभी ये शास्त्र सम्मत् और भावुक वाणी से उपदेश करके मुझे कृतार्थ कर रहे हैं।

इसके उपरांत मैंने इस ग्रंथ को टंकण करने के लिये टंकणज्ञ को भेज दिया। तदुपरांत तीन महीने पश्चात् भगवत्कृपा से मुझे श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की संक्षिप्त जीवनी कहीं से प्राप्त हो गई। फिर चार महीने अनुसन्धान करने के उपरांत वन्दनाष्टक, वन्दना, अष्टक, सूचक भी प्राप्त हुये, वह भी संलग्न कर दिये हैं। जिससे कि सभी लोग श्रील कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद के जीवनी से भी परिचित हों और उनकी महिमा विस्तार से जान सकें।

यदि किसी साधक के मन का भ्रम व संशय इस लघु ग्रंथ को पढ़कर मिटा, तो हम समझेंगे, कि हमारा प्रयास सफल हुआ है। इस ग्रंथ को प्रकाशित करने के चार उद्देश्य हैं-

१. ब्रज के महान् भजनानन्दी संत की आज्ञा का पालन।
२. श्रील कानुप्रिय गोस्वामी के गुणानुवाद का गायन एवं उनकी महिमा का प्रचार-प्रसार।
३. वैष्णवाचार्य की जीवनी व स्तुति-वन्दना के प्रकाशन से वैष्णवों का आनन्दवर्धन करना।

४. संदेहकारी व्यक्तियों को शास्त्र प्रमाणों से अवगत कराना।
५. विश्व में लाखों वैष्णवगण महामंत्र की सुमधुर ध्वनि पर नृत्य-कीर्तन कर रहे हैं, उनसे कोई महामंत्र के उच्च कीर्तन के विरोध वाली बात कहकर ठेस नहीं पहुँचाये, उनके हृदय को दुःखी न करे।

निवेदक- महामंत्र संकीर्तन रुचि अभिलाषी कश्चित् द्वयजन।



किशोरावस्था में गोस्वामी जी

शास्त्र सम्मत सिद्धान्त से ही संदेह, भ्रम, संशय, शंका व विवाद की समाप्ति

हमारे हिन्दू सनातन वैदिक धर्म शास्त्रों पर ही आधारित रहा है, इसी का ही सर्वोत्कृष्ट रूप है- 'वैष्णव धर्म'।

वैष्णव धर्म श्रीश्रीराधाकृष्ण की श्रीचरणकमल प्रीति प्राप्त कराने वाला मुख्य धर्म है। करोड़ों जीवों ने वैष्णवधर्म का अवलम्बन करके भगवत्प्राप्ति की है।

अनेक जन विविध प्रकार के शंका, संदेह, संशय युक्त प्रश्न भी करते हैं, जिनका उत्तर वे जानना चाहते हैं। वैष्णव धर्म के अनुयायी वैष्णवाचार्यों ने उन्हीं संदेह युक्त प्रश्नों के उत्तर अपने ग्रंथों में लिखे हैं, जिनको पढ़कर-सुनकर सबके संदेह, भ्रम, संशय, शंका व विवाद की समाप्ति हो जाती है। यही शास्त्र-ग्रंथ अध्ययन करने की महिमा है।

शास्त्र सम्मत बातों और निष्कर्ष को ही सिद्धान्त कहते हैं। सिद्धान्त को समझने के लिये शास्त्र पढ़ना अति आवश्यक है। हमें सिद्धान्त समझने में आलस्य नहीं करना चाहिये। क्योंकि शास्त्रों को पढ़ने से ही सिद्धान्त समझ में आता है और शास्त्रों को समझने के उपरान्त उसका आचरण करने से श्रीकृष्ण की भक्ति में दृढ़ता आती है। इसी बात को गौड़िय वैष्णावाचार्य श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद स्वरचित श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रंथ (१/२ अध्याय) में स्पष्ट कह रहे हैं-

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर आलस।
इहा हैते लागे कृष्णे सुदृढ़ मानस।।

जब शास्त्र विहित सिद्धान्त की इतनी महामहिमा है, तो अब बात यह उत्पन्न होती है, कि 'हरे कृष्ण महामंत्र' का उच्च कीर्तन करना कर्त्तव्य है अथवा नहीं!

क्योंकि इस ग्रंथ में इसी विषय पर विचार किया गया है, अनेकों शास्त्रों के सटीक सिद्धान्त का उदाहरण देकर श्रील कानुप्रिय गोस्वामिपाद ने प्रमाणित कर दिया है, कि 'हरे कृष्ण महामंत्र' के उच्च कीर्तन का विधान अनेक शास्त्रों में लिखा हुआ है।

इसलिये हमें शास्त्र विहित सिद्धान्तों को मानकर उपासना करनी चाहिये और जो व्यक्ति शास्त्रों में लिखे सिद्धान्तों को नहीं मानते हैं, उनका संग त्याग देना चाहिये। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण भी गीता में शास्त्र प्रमाण को न मानकर मनमाना आचरण करने वाले व्यक्ति को सिद्धि हीन, गतिहीन और सुखहीन बता रहे हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता के सोलहवें अध्याय के २३-२४ श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण शास्त्रों के प्रमाण की ही महिमा गा रहे हैं-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।

जो पुरुष शास्त्र की विधि (शास्त्र विहित सिद्धान्त) को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को ही प्राप्त करता है। इससे तेरे लिये इस कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है।

ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से कर्म (शास्त्र सिद्धान्तानुसार उपासना) ही करने योग्य है।

इसलिये हमें भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करते हुये शास्त्र अनुमोदित उपासना ही करनी चाहिये, वही हमको शान्ति, भक्ति और प्रेम प्राप्त करा सकती है।

अतः हमें शान्ति, भक्ति और प्रेम प्राप्त करने के लिये शास्त्र अनुमोदित उपासना के अंतर्गत 'हरे कृष्ण महामंत्र' का जप व उच्च कीर्तन सदा सर्वदा करते रहना चाहिये, यही इस लेखक का सारांश है।



भाव दशा में खड़े हुए गोस्वामी जी

'हरे कृष्ण महामंत्र' के उच्चस्वर से कीर्तन के पक्ष में चालीस सिद्धान्त

१. प्रेमावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने विश्व के समस्त जीवों को 'हरेकृष्ण महामंत्र' का ही उपदेश किया है।

२. 'हरे कृष्ण महामंत्र' का उपदेश का वर्णन श्रीचैतन्य-चरितामृत व श्रीचैतन्यभागवत ग्रंथ में लिखा है।

३. सोलह नाम बत्तीस अक्षर के मंत्र को ही 'हरे कृष्ण महामंत्र' कहते हैं। ये महामंत्र है-

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

४. 'हरे कृष्ण महामंत्र' का मानसिक जप भी करना चाहिये और उच्च स्वर से कीर्तन भी करना चाहिये।

५. मन में महामंत्र जपने को मानसिक जप कहते हैं और मुख से महामंत्र बोलने को उच्च कीर्तन कहते हैं।

६. श्रीमत् रूपगोस्वामी ने स्वरचित भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा है- **'उच्चैः स्वरे तु कीर्तनम्।'** अर्थात् उच्च स्वर से शब्द को बोलना ही कीर्तन कहलाता है।

७. मुख से बोलने को 'कीर्तन' कहते हैं, कीर्तन में यह आवश्यक नहीं है, कि खोल-करताल के साथ हरिनाम बोला जाये। मुख से स्पष्ट रूप में उच्च स्वर में बोला गया नाम ही कीर्तन कहलाता है। यही कीर्तन की परिभाषा है।

८. खोल-करताल आदि वाद्य बजाकर और राग-रागिनियों के साथ नाम का गायन को 'संकीर्तन' कहते हैं। संगीतमय कीर्तन ही संकीर्तन कहलाता है। यही संकीर्तन की परिभाषा है।

९. वाद्य और राग आदि के बिना भी जो भी बोला जाये, उसे 'कीर्तन' कहते हैं एवं वाद्य और राग आदि के साथ जो नाम बोला जाये 'संकीर्तन' कहते हैं।

१०. श्रीचैतन्यभागवत (मध्यखण्ड २३ अध्याय) में श्रीचैतन्य महाप्रभु ने समस्त भक्तवृन्द को साक्षात् उपदेश किया है, कि 'हरे कृष्ण महामंत्र' का संख्याबद्ध जप व हाथों से ताली बजाते हुए कीर्तन करना चाहिये।

११. 'हरे कृष्ण महामंत्र को जप करना चाहिये, यही इसकी विधि है और हरे कृष्ण महामंत्र को उच्च स्वर से कीर्तन नहीं करना चाहिये, यह निषेध है'- ऐसा जो व्यक्ति बोलते हैं, वे नाम को विधि-निषेध के अन्तर्गत लाकर अपराध ही करते हैं।

१२. नाम और नामी में कोई भेद नहीं है। हरिनाम और हरि अभिन्न हैं। जिस प्रकार नामी हरि किसी भी विधि-निषेध के अन्तर्गत नहीं है, तो फिर नाम विधि-निषेध के अन्तर्गत कैसे आ सकते हैं?

१३. गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के षड्गोस्वामिगण व भजनानन्दी संतों ने स्वरचित ग्रन्थों में कहीं भी नहीं लिखा है, कि 'महामंत्र का उच्चस्वर से कीर्तन नहीं होना चाहिये।' फिर भी यह कल्पना कहाँ से प्रचलित हो गई, यह भी विचारणीय बात है।

१४. हमारे गौड़ीय सम्प्रदाय में माला से गणना करके संख्यायुक्त नाम जपने का नियम तो है, क्योंकि इससे निष्ठा बनती है। साधक प्रतिदिन उतने नाम तो अवश्य ही जपेगा और भजन के नियम में शिथिलता नहीं आयेगी, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है, कि माला से संख्या पूर्ण होने के बाद उस नाम का कीर्तन नहीं कर सकते।

१५. महामंत्र में १६ नाम हैं, ये सभी सम्बोधन परक हैं, अर्थात् पुकार युक्त हैं। सीधा-सा अर्थ यह है, कि ८ बार श्रीराधा को पुकारा जा रहा है और ८ बार कृष्ण को पुकारा जा रहा है। पुकार भावयुक्त होती है, पुकार व्याकुलता युक्त होती है, फिर ऐसा क्या कारण है भगवान को उनका नाम गिनकर ही पुकारा जाना उचित है और नाम गिनकर पुकारने पर ही वे आयेंगे, अन्यथा नहीं आयेंगे।

१६. कुछ साधकों का मत है, कि 'हरे कृष्ण महामंत्र' का केवल मानसिक जप ही करना चाहिये, इसका उच्च स्वर में कीर्तन नहीं करना चाहिये। उनका ऐसा कहना उचित नहीं है।

१७. जिन साधकों का यह मत है, कि 'हरे कृष्ण महामंत्र' का उच्च स्वर से कीर्तन नहीं करना चाहिये, इसके पक्ष में वह कहते हैं, कि श्रीमन्महाप्रभु ने कभी-भी 'हरे कृष्ण महामंत्र' का उच्च कीर्तन नहीं किया है और न ही इसका उपदेश किया है।

१८. ऐसे साधक यह भी कहते हैं, कि 'हरे कृष्ण महामंत्र' का जप करने के लिये कहा है, कीर्तन करने के लिये, तो दूसरा मंत्र बताया है-'हरे हरये नमः, कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन।।'

१९. यहाँ यह बात समझ में नहीं आती है, कि श्रीमन्महाप्रभु जीवों के जप के लिये एक मंत्र और कीर्तन के लिये दूसरा मंत्र क्यों बतायेंगे? जबकि सभी गौड़ीय ग्रंथों में 'हरे कृष्ण महामंत्र' का ही बारम्बार उल्लेख हुआ है।

२०. जो साधक यह कहते हैं, कि महामंत्र का उच्च स्वर से कीर्तन करना (बोलना) निषिद्ध है, उनका यह मत इस प्रसंग से ही खण्डित हो जाता है, कि-

प्रेमावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के प्रिय पार्षद नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम जपते थे। उसमें से एक लाख हरिनाम जपते थे। उसमें से एक लाख हरिनाम तो उच्च स्वर से बोलते थे।

२१. उन साधक से यह कहा जाता है, कि नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर ने तो उच्च स्वर से 'हरे कृष्ण महामंत्र' का कीर्तन किया है, तब वह कहते हैं, श्रील हरिदास ठाकुर ने संख्याबद्ध महामंत्र का कीर्तन किया है, अर्थात् एक लाख हरिनाम की गणना करते हुये महामंत्र बोला है, संख्या विरहित नहीं।

२२. उन साधकों का मत है, कि 'महामंत्र को माला से गिनकर (संख्या रखकर) बोल सकते हैं, संख्या की गणना किये बिना नहीं।' यहां यह विचार करना आवश्यक है, कि वह महामंत्र संख्या गिनकर बोलने पर सही माना जायेगा और बिना संख्या के बोलने पर अमान्य या फलहीन माना जायेगा। ऐसा कैसे हो सकता है?

२३. जिन साधकों महामंत्र के उच्च कीर्तन करने में संदेह था, उनको समझाने के लिये ५५ वर्ष पूर्व नवद्वीप के गोविन्द मन्दिर के प्रतिष्ठाता श्रील भुवनेश्वर साधु ठाकुर ने 'हरिनाम मंगल' ग्रंथ लिखा।

२४. महामंत्र के उच्च कीर्तन के विषय में संदेह करने वाले व्यक्तियों को समझाने के लिये नवद्वीप के श्रीधामेश्वर महाप्रभु मन्दिर के सेवायत श्रील प्राणगोपाल गोस्वामी प्रभुपाद ने 'महामंत्र मंगल' नामक ग्रंथ लिखा।

२५. 'हरे कृष्ण महामंत्र' के उच्च कीर्तन के सम्बन्ध में सैकड़ों प्रमाण गौड़ीय ग्रंथों में लिखे हैं, उनका अध्ययन करने की आवश्यकता है।

२६. श्रील कानुप्रिय गोस्वामी के ५५ वर्ष पूर्व विरचित ग्रंथ के अकाट्य शास्त्र प्रमाण से विपक्ष के लोग शांत हो गये और उनकी शंका समाधान हो गये।

२७. चैतन्यडोबा, हालिशहर निवासी श्रील किशोरीदास बाबा जी ने भी 'हरे कृष्ण महामंत्र जप व संकीर्तन विधान' नामक ग्रंथ ३० वर्ष पूर्व प्रकाशित किया है। जिसमें उन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके प्रमाणों को संलग्न किया है।

२८. गौड़ीय गोस्वामीगण रचित संस्कृत ग्रंथों और परवर्ती पदकर्त्ता महाजन रचित बाँग्ला पदावली ग्रंथों में 'हरे कृष्ण' शब्द बारम्बार आया है, जो यह प्रमाणित करता है, कि यही 'हरे कृष्ण महामंत्र' हमारे सम्प्रदाय का जपनीय व कीर्तनीय मंत्र है।

२९. 'हरे कृष्ण महामंत्र' दीक्षा मंत्र नहीं है, जो कि प्रातः सांय शुद्धावस्था में आसन पर बैठकर मानसिक जप किया जाये। यह तो श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उपदेशित मंत्र है इसको तो सभी क्रियाओं और अवस्थाओं में जप व कीर्तन किया जा सकता है।

३०. 'हरे कृष्ण महामंत्र' में मानसिक जप, उच्च कीर्तन, संख्यायुक्त व संख्या विरहित आदि का कोई विधि निषेध व प्रतिबन्ध नहीं है। इसका तो निरन्तर जप व कीर्तन करते रहना चाहिये।

३१. महाप्रभु के लीलास्थल श्रीअम्बिका कालना में सिद्ध श्रील भगवानदास बाबाजी महाराज 'हरे कृष्ण महामंत्र' के चित्रपट की सेवापूजा करते थे और महामंत्र का जप-कीर्तन करते थे। कालना में आज भी वह विद्यमान है।

३२. श्रीनित्यानन्द प्रभु के पुत्र श्रीवीरचन्द्र प्रभु ने श्रील धनन्जय गोपाल प्रभु के पुत्र श्रील यदुगोपाल ठाकुर को 'हरे

कृष्ण महामंत्र' की शिला-लिपि प्रदान की। वह भी बेगुन-कोदर पुरुलिया में आज भी प्रमाण रूप में विद्यमान है। महामंत्र का नाम-कीर्तन बड़े हर्षोल्लास से वहां होता ही रहता है।

३३. श्रीमन्महाप्रभु के प्रिय पार्षद नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर ने भी 'हरे कृष्ण महामंत्र' की अद्भुत व्याख्या की है। जिससे यह सहज ही सिद्ध हो जाता है, कि यह महामंत्र ही गौड़ीय वैष्णवों का प्रमुख कीर्तन है।

३४. श्रीमन्महाप्रभु के प्रिय पार्षद श्रील रघुनाथदास गोस्वामिपाद ने भी 'हरे कृष्ण महामंत्र' की सुमधुर व्याख्या की है। इससे ही प्रमाणित हो जाता है, कि यह महामंत्र ही गौड़ीय सम्प्रदाय का मूल मंत्र है।

३५. श्रीमन्महाप्रभु के प्रिय पार्षद श्रील गोपालगुरु गोस्वामि पाद ने 'हरे कृष्ण महामंत्र' के नामों की सुमधुर व्याख्या की है। यह भी प्रमाणित करता है, कि गौड़ीय भक्तों का यही सर्वस्व है।

३६. श्रीमन्महाप्रभु के प्रिय पार्षद श्रील जीव गोस्वामिपाद ने भी 'हरे कृष्ण महामंत्र' के नामों का दिव्य अर्थ किया है। जिससे सहज ही प्रमाणित हो जाता है, कि गौड़ीय संतों का यह प्रमुख नाम संकीर्तन है।

३७. गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद ने भी स्वरचित 'श्रीहरिनामार्थ दीपिका' नामक ग्रंथ में 'हरे कृष्ण महामंत्र' की विशेष व्याख्या की है और साथ ही लिखा है-श्रीराधारानी भी अपने श्यामसुन्दर के वियोग में उच्च स्वर से 'हरे कृष्ण महामंत्र' का गायन करती हैं।

३८. समस्त गौड़ीय ग्रंथों बारम्बार महामंत्र का वर्णन यही सिद्ध करता है, यह महामंत्र ही गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचलित जप-कीर्तनीय मंत्र है।

३९. पाँच वैष्णवाचार्यों के द्वारा महामंत्र की व्याख्या से भी यही सिद्ध होता है, कि गौड़ीय सम्प्रदाय का यही अभीष्ट मंत्र है।

४०. प्रेमावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने श्रीचैतन्य भागवत ग्रंथ में स्पष्ट उद्घोषणा की है- सम्पूर्ण पृथ्वी के नगर-ग्रामों में मेरे नाम का ही प्रचार-प्रसार होगा।

आज सम्पूर्ण पृथ्वी के नगर-ग्रामों में 'हरे कृष्ण महामंत्र' नाम का ही प्रचार-प्रसार हो रहा है। यही प्रमाण सिद्ध कर रहा है, कि श्रीचैतन्य महाप्रभु की वचन प्रतिज्ञा इसी महामंत्र के द्वारा पूर्ण हो रही है।

पृथ्वी ते आछे यत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइवे मोर नाम।।
(चैतन्यभागवत/अन्त्य लीला/परिच्छेद-४/पयार-१२६)



श्रील कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद का पितृवंश

प्रेमावतार श्रीमन्महाप्रभु के प्रियपार्षद श्रील सदाशिव कविराज

श्रील पुरुषोत्तमदास ठाकुर

श्रील कानु ठाकुर श्रील शिशुकृष्णदास

चतुर्थ पुत्र श्रील वंशीवदन गोस्वामी

द्वितीय पुत्र श्रील जनार्दन गोस्वामी

श्रील रामकृष्ण गोस्वामी

प्रथम पुत्र श्रील गोपालवल्लभ गोस्वामी

द्वितीय पुत्र श्रील कृष्णकिंकर गोस्वामी

द्वितीय पुत्र श्रील कमललोचन गोस्वामी

द्वितीय पुत्र श्रील मनोहर गोस्वामी

श्रील सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी

१. श्रील कानुप्रिय गोस्वामी
२. श्रील दामोदर गोस्वामी
३. श्रील गोकुलानन्द गोस्वामी
४. श्रील रमानाथ गोस्वामी
५. श्रीला ललिता देवी

(४. श्रील रमानाथ गोस्वामी →)
१. श्रील गौर राय गोस्वामी
२. श्रील श्यामराय गोस्वामी
३. श्रीला शुभ्रा देवी
४. श्रील किशोर राय गोस्वामी (श्रील देवू प्रभु)

नोट– श्रील किशोर राय गोस्वामी विरचित भक्तिसुधा तरंगिणी ग्रंथ के २३वें पृष्ठ से उद्धृत।

श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामी का वन्दनाष्टकम्

श्रीमत् कानुप्रियं वन्दे नामाचार्यं महद्‌गुरुम्।
प्रेरितं कृष्ण देवेन जगतो हितकाम्यया।।१।।

श्रीनामाचार्य महद्‌गुरु श्रीमद् कानुप्रिय गोस्वामी प्रभु की वन्दना करता हूँ, जो जगत के मंगल के लिये श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरित हुये हैं।

आविर्भूय धराधाम्नि गौड़देशे सतां गृहे।
जन्मनः प्रभृति स्तक्तः संसार व्यवहारतः।।२।।

जिन्होंने इस धराधाम गौड़देश (बंगाल) में सद्‌गृह में आविर्भूत होकर आजन्म संसार के व्यवहारिक सम्बन्धों का त्याग किया है।

हरेकृष्ण महामंत्र कलिकाले विशेषतः।
साधनमुत्तमं प्रभुः आचार्यः प्रददाति च।।३।।

इस विशेष कलियुग में 'हरे कृष्ण महामंत्र' ही उत्तम साधन है, यह स्वयं आचरण करके आप प्रदान कर रहे हैं।

नाम्नः परतरं नास्ति विशेषतः कलौयुगे।
अतोहसौ नाम याजने निरलसो भवेन्मुदा।।४।।

हरिनाम भजन से श्रेष्ठतम साधन और कोई नहीं है विशेषतः इस कलियुग में। इसलिये आप नाम भजन में निरालस होकर आनन्दपूर्वक उपदेश करते थे।

नाम्नोभिया कलेश्चराः प्रभुं हन्तुं पुनः पुनः।
चेष्टन्ते बहुशो वज्रैः विफला स्युः प्रतिक्षणम्।।५।।

हरिनाम के प्रचार से भयभीत होकर कलियुग के चरसमूह वज्रपात द्वारा प्रभु को हत्या करने की चेष्टा के मनोरथ प्रतिक्षण विफल हो रहे हैं।

भक्तिशास्त्र प्रचारेण विरूद्धमत खण्डने।

प्रतिज्ञा यादृशी प्रभोः सहसा नैव दृश्यते।।६।।

भक्ति शास्त्र प्रचार द्वारा भक्ति विरोधी मत का खण्डन करने में आपकी जिस प्रकार की चेष्टा और प्रतिज्ञा है, वह अन्य कहीं दिखाई नहीं देती है।

कृष्णस्य दयितो यतः 'कानुप्रियः' स्वनामतः।

आकार सदृशः प्राज्ञः जनैर्दृष्टः स्वरूपतः।।७।।

क्योंकि आप श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रिय हैं, इसलिये आपका नाम 'कानुप्रिय' है। आपके स्वरूप का दर्शनकर जन समुदाय जान लेता था, कि आप प्रकृष्ट सर्वज्ञ कल्प हो।

नाम विज्ञान वैचित्री विचाराचार्य विग्रहम्।

गोस्वामी प्रवरं वन्दे श्रीमत् कानुप्रिय प्रभुम्।।८।।

श्रीनामरूपी विज्ञान का सूक्ष्म तत्त्व विचार, आचार और प्रचारकारी गोस्वामी प्रवर श्रीमत् कानुप्रिय प्रभुपाद की वन्दना करता हूँ।

गोविन्दं मधुसूदनं स्मरति यो भक्ताग्रगण्यः प्रधीः,

भक्तिप्रेम विलेखने सकुशलौ यस्य प्रकृष्टौ करौ।

कैशोरः समयात् परं लिाति यो सिद्धान्त शास्त्रं सुधीः,

पातुं त्रातुं च मां नराधम परं कानुप्रियः श्रीप्रभुः।।९।।

श्रीब्रज विलासी श्रीगोविन्द के लीला स्मरण मननकारी जो भक्ताग्रगण्य हैं, नाम चिन्तामणि, रागभक्ति रहस्य

दीपिका, भक्ति रहस्य दीपिका, वैजयन्ती माला, जीवेर स्वरूप ओ धर्म लिखने में जिनके करकमल की कौशल लेखनी है।

जो जीवन पर्यंत भक्ति-सिद्धान्त शास्त्र का प्रकाशन कर जगत् का मंगल किये हैं, वे ही श्रील कानुप्रिय गोस्वामी मेरे जैसे अधम जीव पर कृपा कर भक्ति पथ का पालन करवायें और भजन विघ्न से रक्षा करें।

-राधाकृष्णदेव शर्मा (अध्यापक)
राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
नवद्वीप, नदिया (प.बंगाल)

नोट- 'श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामीर संक्षिप्त जीवनालेख्य' ग्रंथ के पृष्ठ संख्या ५ से उद्धृत। यह ग्रंथ 'श्रीगौरराय सेवाकुंज' प्राचीन मायापुर दक्षिण नवद्वीप, नदिया से प्रकाशित है।



श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना

मायाहत मुई यवे करि घोर विपथे गमन।
केशे धरि उद्धारिले सेई तुमि सुरेन्द्रनन्दन।।
संस्कार करि तवे श्रीकृष्णे समर्पण।
किवा से अपूर्व कृपा ना याय कथन।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।१

हे श्रील सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी के सुपुत्र! जब मैं माया से ग्रसित होकर कुमार्ग पर चल रहा था, तब आपने मेरे केश पकड़कर मेरा उद्धार किया। तब शास्त्र विधि से दीक्षा संस्कार करके श्रीकृष्ण चरणकमल में मुझको समर्पित किया। आपने ऐसी कृपा की, जो मैं वाणी से अभिव्यक्त नहीं कर सकता। इसलिये मैं अपने परमाराध्य गुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

आत्महत्याकामी मुइ बड़ अभाजन।
ये तेछे विफले जन्म करिया भावन।।
कर्णधार रूपे कराओ कृष्णानुशीलन।
भवसिन्धु तराइते गुरुरूपे दरशन।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।२

दुर्भाग्यवान मैं सदैव निराशावादी वाला मनुष्य था और मेरा जन्म विफल हो रहा था। तभी आपने जैसे सागर पार करने के लिये केवट आता है, ठीक उसी प्रकार गुरुदेव स्वरूप में आकर आपने भवसागर पार करवाकर मुझे श्रीकृष्ण की उपासना सिखायी। इसलिये मैं अपने परमाराध्य गुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वंदना करता हूँ।

उलुकेर न्याय छिनु घोर अन्धतमजन।
ज्ञानांजने करलेन सेई चक्षुरून्मिलन।।
तापतप्त हिया माझे याँर शीतल चरण।

सेई से आमार गुरु पतित पावन।।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।३

जैसे उल्लू प्रकाश में भी देख नहीं पाता है, ठीक इसीप्रकार मैं अज्ञानरूपी अंधकार में डूबा हुआ था। आपने ज्ञानरूपी शलाका से मेरा अज्ञान रूपी अंधकार दूर किया। मेरा विविध कामनाओं से तप्त हृदय आपके सुशीतल श्रीचरण से शांत हो गया। इसलिये मैं अपने परमाराध्य गुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

मलिन चित्त दर्पणेर करिया मार्जन।
तापदग्ध मो अधमे कृष्ण भक्तिमान।।
तोमार अपूर्व कृपा कानुप्रिय रूपवान्।
जन्मगंल नामरूप चिन्तामणिदान।।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।४

आपने मेरे चित्तरूपी दर्पण की मलिनता को स्वच्छ करके, त्रिताप ज्वाला से दग्ध मुझ जैसे अधम को कृष्ण भक्ति प्रदान की।

हे गुरुदेव! आपने अपूर्व कृपा की है, जो आपने जगत का मंगल करने वाले हरिनाम के महत्व को प्रकाश करने वाले 'नामचिन्तामणि' ग्रंथ की रचना की। इसलिये मैं अपने परमाराध्य गुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वंदना करता हूँ।

व्यवहारिक गुरु तेंई ज्येष्ठ तात हन।
कुलगुरु रूपेओ आछे ताँर प्रकाशन।।
नित्य सिद्ध आम्नाय सिद्ध ये से जन।
कृष्ण मंत्रदाता ताय पूर्ण तत्व ज्ञान।।
करिमोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।५

आप व्यवहारिक से मेरे ज्येष्ठ तात (ताऊ जी) हो और हमारे परिवार के गुरु रूप में भी आपका आविर्भाव हुआ है। सिद्ध परम्परा से प्राप्त कृष्ण मंत्र जो आपने हमें प्रदान किया है, उसका भी आपको पूर्ण तात्विक ज्ञान है। इसलिये मैं अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

शान्त, निर्मत्सर, शुद्ध भक्ताग्रगण्य।
सम्प्रदायी सदाचारी से एक अनन्य।।
शुक्लाम्बर, सेवापर, सर्वाश्रय दाता।
वात्सल्यादि गुणयुक्त हन मोर त्राता।।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।६

आप शान्त, निर्मत्सर व शुद्ध भक्तों में श्रेष्ठ हो। आप गौड़ीय सम्प्रदाय के नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले हो। आप भगवत्सेवा परायण, सबको आश्रय देने वाले हो और आपने वात्सल्य आदि सद्गुणों से मेरा उद्धार किया है। इसलिये मैं अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

प्रियदर्शी, गुणजयी, कृष्ण गुणगान।
याहाँर वदने स्फुरे नित्य अविराम।।
सेवानन्द दाता सेई पितृमातृ अग्रगण्य।
सर्ववान्छा पूर्ण करेन परम वदान्य।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।७

आप सदैव दोष में भी गुण देखने वाले, सत्व-रज-तम तीनों गुणों पर विजय प्राप्त करने वाले हो। आपके श्रीमुख से निरन्तर श्रीकृष्ण गुणगान होता रहता है।

हे माता-पिता से श्रेष्ठ गुरुदेव! आप ही सेवा का आनन्द प्रदान करने वाले हो और सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने में सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिये मैं अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेव श्रीकानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

यार प्रसन्नतीय, हन श्रीकृष्ण प्रसन्न।
याँर अप्रसादेते आर गति नाहि अन्य।।
तव कृपा लभि मुई आजि अति धन्य।
कानुप्रिय तव कीर्ति सर्वाग्रगण्य।।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।८

जिनको प्रसन्न करने से श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं एवं उनकी कृपा बिना इस संसार में और कोई गति नहीं है। आज आपकी कृपा प्राप्त कर मैं धन्य हो गया हूँ।

हे कन्हैया के प्रिय मेरे गुरुदेव! आपके 'श्रीकानुप्रिय गोस्वामी' नाम की कीर्ति रूपी पताका संसार फहर रही है। इसलिये मैं अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

समष्टिर गुरु सेई मूल नारायण।
व्यष्टि रूपे तत्प्रकाशे अधमतारण।।
ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूपे से स्वयं भगवान्।
गुरु रूपे आसि सेई, पुनः कृष्णदास हन।।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।९

तत्त्व रूप में आप स्वयं भगवान हैं, व्यवहारिक रूप में आप हम जैसे अधम जीवों का उद्धार के लिये गुरु स्वरूप में आये हैं। आप ब्रह्म-विष्णु-महेश के स्वरूप होकर भी धरातल पर गुरु रूप में स्वयं को श्रीकृष्ण का दास ही

मानते हो। इसलिये मैं अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

सर्व देवमय सेई मोर गुरु हन।
मर्त्यबुद्धिये कभु ताँरे ना करि भावन।।
कृष्णेर प्रकाशरूप सेई लय मन।
वेदाचार्य ज्ञाने करि ताँहार वन्दन।।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।१०

सर्व देवों का स्वरूप होते हुये भी आप मेरे गुरुदेव हैं और आप पाँच भौतिक देह तक ही सीमित नहीं हो। श्रीकृष्ण के प्रकाश रूप में अवतीर्ण होकर आये हो। वैदिक सिद्धान्त का पालन करते हुये, मैं सदैव आपका स्मरण करता हूँ। इसलिये मैं अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

कानुप्रिय कानु-प्रिय सदा ध्याय मन।
एइ हेतु गुरु कृष्णे अभेद चिन्तन।।
गुरु मूर्त्ये कृष्ण कृपा हय प्रकाशन।
शास्त्र सिद्ध एइ तत्त्व करि सन्दर्शन।।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।११

श्रील कानुप्रिय गोस्वामी का मन श्रीकान्हा की प्रिया श्रीराधा जू का सदैव ध्यान करता रहता है।

अतः श्रीगुरु और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है। श्रीकृष्ण ही श्रीगुरुदेव के रूप में प्रकाशित होते हैं। शास्त्र का यही सिद्धान्त हम बताते हैं। इसलिये मैं अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

राधाकृष्ण युगल सेवा कुंजे रात्रि दिन।
लभिव कि सिद्ध-देहे मुई पापी हीन।।
गुरुरूपा सखी पार्श्वे से अपूर्व दरशन।
मंजरीर आनुगत्ये कि मोर वान्छित पूरण।।
करि मोर परमाराध्य कानुप्रिय देवेर भजन।।१२

कुंज में श्रीराधाकृष्ण की युगल सेवा करने के लिये मुझ जैसे पापी को क्या मंजरी सखी देह प्राप्त होगा? श्रीगुरु रूपा सखी के मंजरियों के आनुगत्य में साथ मेरी युगल दर्शन व सेवा की अभिलाषा क्या पूर्ण होगी? इसलिये मैं अपने परमाराध्य श्रीगुरुदेव श्रील कानुप्रिय गोस्वामी की वन्दना करता हूँ।

-श्रीचरणाश्रित
गौरराय गोस्वामी
श्रीनवद्वीप धाम

नोट- 'नामचिन्तामणि तृतीय किरण' ग्रंथ के पृष्ठ संख्या ५-७ से उद्धृत। यह ग्रंथ 'श्रीगौरराय सेवाकुंज' प्राचीन मायापुर दक्षिण नवद्वीप, नदिया से प्रकाशित है।

श्रीश्रीकानुप्रियप्रभोरष्टकम्

स्निग्धोज्ज्वलं प्रशान्तवदनं भावस्निग्धकायम्,
शुक्लाम्बर युगधरं सितकेश सितद्युतिम्।
श्रीराधाकुण्ड रज तिलक शोभितं ब्रजेन्द्र तनय प्रियम्,
कानुप्रियं प्रभुं वन्दे गौरराय सेवकम्।।१।।

जो करूणामय विग्रह स्वरूप जिनका श्रीमुख मण्डल स्निग्ध, उज्ज्वल व प्रशान्त हैं, जो श्वेत वस्त्र व श्वेत उत्तरीय धारण किये हुये हैं, जिनके शुभ्र केश व अंगज्योति अपूर्व महिमा मण्डित है। जिनके श्रीअंगों में श्रीराधाकुण्ड रज द्वारा निर्मित तिलक शोभायमान हैं एवं जो श्रीकृष्ण के अतिप्रिय हैं। उन्हीं श्रीगौर राय के सेवक श्रीकानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद को मैं प्रणाम करता हूँ।

नवद्वीप धाम्नि प्राचीन मायापुरे स्निग्ध कुटीरे,
स्वप्रिय हरिनाम ग्रहणे व्यापृतं सर्वक्षणम्।
मधुरमूर्ति माह्लादकमं दयार्द्रचित्तं भवसमुद्रसंतारकम्,
कानुप्रियं प्रभुं वन्दे गौरराय सेवकम्।।२।।

जो नवद्वीप धाम के प्राचीन मायापुर में स्निग्ध कुटीर में निज अत्यन्त प्रिय श्रीहरिनाम ग्रहण में सर्वदा व्यस्त रहते हैं, जो महिमा निज प्रतिभा व भजन निष्ठा के फल से भक्ति जगत में विशिष्ट स्थान के अधिकारी, दया के समुद्र एवं कलि जीवों के भवसागर उद्धारकर्त्ता वे ही श्रीगौरराय के सेवक श्रील कानुप्रिय गोस्वामी प्रभु को प्रणाम करता हूँ।

पितृ पिता महादि नाम वलम्व्य मतम्,
जगतः तापनाशाय सदाकृत यत्नम्।
कालताप निवाराय हरिनाम दातारम्,
कानुप्रियं प्रभुं वन्दे गौरराय सेवकम्।।३।।

पितृ–पितामह आदि पूर्व पुरुषगणों के मत अवलम्बन पूर्वक सदा सर्वदा जगत के कलिताप निवारण के लिये सचेष्ट रहते हैं एवं वही उद्देश्य लिये हरिनाम दान करते हैं। वे ही श्रीगौरराय के सेवक श्रीकानुप्रिय गोस्वामी प्रभु को प्रणाम करता हूँ।

जनहीन कुटीरे गौरराय सहायम्,
भजन प्रवाह मग्नं व्यतीतं सुचिरम्।
नाम रसास्वादने सर्वदैव मग्नम्,
कानुप्रियं प्रभुं वन्दे गौरराय सेवकम्।।४।।

निर्जन कुटीर में अकेले प्रभु श्रीगौर राय को लेकर जो दीर्घकाल भजन मग्न होकर सर्वदा ही श्रीहरिनाम रस आस्वादन में निमग्न रहते हैं, उन्हीं श्रीगौर राय सेवक श्रीकानुप्रिय गोस्वामी को प्रणाम करता हूँ।

आचार प्रचारे समं सयत्नम्,
जीवहित मानसे रचितं ग्रंथम्।
श्रीग्रंथसेवया लोकहित कारकम्,
कानुप्रियं प्रभुं वन्दे गौर राय सेवकम्।।५।।

जो श्रीभक्ति अंगों के अनुष्ठान में सदाचार पालन में एवं उसके प्रचार में समान यत्नशील रहकर जीवों के कल्याण करने के लिये लोकहित कारक ग्रंथ रचना किये हैं, उन्हीं श्रीगौर राय सेवक श्रीकानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद को प्रणाम करता हूँ।

शास्त्रोपदेश विरक्ति विहीनम्,
जीव दुःख दर्शने दयार्द्र चित्तम्।
जीव दुःख नाशाय त्यक्तं स्वजनम्,
कानुप्रियं प्रभुं वन्दे गौरराय सेवकम्।।६।।

जो शास्त्रीय उपदेश प्रदान करने में सदा तत्पर है, जीवों के दुःख दर्शन में जिनका चित्त सदा ही कातर रहता है, जीवों के दुःख नाश हेतु आत्मीय स्वजनों तक को परित्याग कर दिया है, उन्हीं श्रीगौर राय के सेवक श्री कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद को प्रणाम करता हूँ।

प्राचीन तपोवने यथा महर्षिः,
तद्वत् स्निग्ध कुटीरे निर्जने वसति।
विषय विषयीसंग परिहार मानसे,
कानुप्रियं प्रभु वन्दे गौरराय सेवकम्।।७।।

प्राचीन तपोवन में महर्षिगण जिस प्रकार लोक संग भय से जिसप्रकार निर्जन में निवास करते थे। श्रीकानुप्रिय गोस्वामी भी उसी प्रकार विषय व विषय लोगों का संग त्याग कर मन से निर्जन कुटीर में अवस्थान करते हैं, उन्हीं श्रीगौरराय के सेवक श्रीकानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद को प्रणाम करता हूँ।

यस्याविभावः जगतः हिताय,
कलि पीडित जनानां परमाश्रयाय।
दयाद्र चेतसे करूणाघनाय,
तस्मै नमो नमः श्रीमत् कानुप्रियाय प्रभवे।।८।।

जगत हित के लिये जिनका आविर्भाव हुआ है, जो कलि पीड़ित जनों के परम आश्रय स्वरूप हैं, जिनका दयार्द्र एवं करूणाघन विग्रह हैं, उन्हीं श्रीकानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद को मैं प्रणाम करता हूँ।

लिखितमष्टक मेतं गौराचाँदेन शर्म्मना।
केनचित् भक्ताभासेन त्रिवेणी वासिनाधुना।।९

यह अष्टक त्रिवेणी निवासी भक्ताभास गौराचाँद द्वारा लिखा गया है।

प्रभोरष्टकमेतं भोः पठितत्यं प्रयत्नतः।
सभक्तिरष्टकपाठे भक्ति लाभे न संशयः।।१०

श्रीहरिनाम का रुचिपूर्वक जप की इच्छाकारी हे वैष्णवगणों! श्रीकानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद का यह अष्टक भक्तिपूर्वक पाठ करना कर्त्तव्य है। चूँकि भक्तिपूर्वक पाठ करने से निश्चय ही भक्ति लाभ होगी, इसमें कोई संशय नहीं है।

–गौराचाँद शर्मा
त्रिवेणी निवासी

नोट– श्रील किशोरराय गोस्वामी विरचित 'भक्तिसुधा तरंगिणी' ग्रंथ से उद्धृत। यह ग्रंथ 'श्रीगौरकिशोर शांतिकुंज' प्राचीन मायापुर दक्षिण नवद्वीप, नदिया से प्रकाशित है।



श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामी का सूचक कीर्तन

सपार्षदे गौरहरि, भुवनेते अवतरि,
नामप्रेम करे वितरण।
एक एक गौर परिकरे, जगत् तारिते पारे,
वन्दि आमि सवार चरण।।
परिवारगण माझे, तिन महाशय राजे,
श्रीकृष्ण भक्त रसपूर।
कविराज सदाशिवसुत, श्रीपुरुषोत्तम पूत,
तार पुत्र कानाई ठाकुर।।

सपार्षद श्रीगौरहरि इस पृथ्वी पर अवतार लेकर नाम प्रेम वितरण किये। श्रीगौरांग का प्रत्येक पार्षद जगत् का उद्धार कर सकता है, इसलिये मैं उन सबके श्रीचरणों में वन्दना करता हूँ।

इनके परिवार में तीन महाशय रहते थे, वे सभी कृष्ण प्रेमरस से परिपूर्ण थे। श्रील सदाशिव कविराज के सुपुत्र श्रीपुरुषोत्तमदास और उनके सुपुत्र श्रीकानाई ठाकुर हुये।

नित्यानन्द कृपापात्र, माता जाह्नवा पालित,
शिशु कृष्णदास नाम याँर।
ताँ सवार श्रीचरण, मस्तके करि धारण,
कुलेर प्रदीप ये आमार।।
एइ वंशेर श्रीपाटे, नदिया भाजन घाटे,
जनमिला कत महाजन।

गोस्वामी सुरेन्द्रनाथ, श्रीकानुकुलेते जात,
समाजे प्रसिद्ध एकजन।।

श्रीनित्यानन्द प्रभु के कृपापात्र, जो श्रीजाह्नवा माता ठाकुराणी के द्वारा लालित-पालित हुये थे, उनका नाम श्रीशिशुकृष्णदास है। इन सबके श्रीचरण मस्तक पर धारण करता हूँ। ये कुल के ही प्रदीप हैं।

इस वंश के श्रीपाट नवद्वीप स्थित भाजनघाट में जहां कई भजनानन्दी महात्मा प्रकट हुये हैं, उनमें श्रील सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी हैं।

कानुप्रिय प्रभुवर, पुत्ररूपे याँर घर,
आलो करि हइला उदय।
कानु ठाकुर कृपाधन्य, नहेन तिनि सामान्य,
ये पेयेछे ताँर परिचय।।
श्रीगुरु करूणामय, कानुप्रिय महाशय,
हरिनामे प्रेमेर मूरति।
रुपानुग भक्तिमूर्ति, हरिकथा सदास्फूर्ति,
भजन प्रभावे अंगे ज्योति।।

इन्हीं के गृह में श्रील कानुप्रिय गोस्वामी गृह को आलोकित करते हुये जन्म लिये। ये कृष्णप्रेम की साक्षात् मूर्ति और वैष्णव समाज में प्रसिद्ध महात्मा हुये।

आप रुपानुगभक्ति के स्वरूप ही थे। इनके मुख से सदा ही हरिकथा स्फुरित होती रहती थी और इनके श्रीअंगों की ज्योति से इनके भजन का प्रताप दिखाई देता था।

अल्प वयस हते, विषय वैराग ताँते,
गौरराय सदा सेवा करे।
विषयरस त्येजिया, भक्ति लालसित हिया,
भक्ति शास्त्र दिवारात्रि पढ़े।।
शास्त्रसिन्धु प्रवेशिया, गभीर नीरे डूबिया,
जटिल सिद्धान्त रत्न तुले।
भक्तिग्रंथ सृष्टि करि, जगत् सन्मुखे धरि,
तापित पराण जुड़ाइले।।

अल्पावस्था से ही अपने श्रीगौरराय की सेवा करते हुये विषयों से मुक्त वैराग्यमय जीवन व्यतीत किया। सदैव भक्ति शास्त्रों का अध्ययन करते रहते और शास्त्र-सिन्धु में प्रवेश करके जटिल सिद्धान्तों का समाधान कर दिया।

भक्ति ग्रंथों की रचना करके जगत् के सन्मुख रखकर त्रिताप से तापित जनों के प्राणों को शांति प्रदान की।

पड़िया श्रीग्रन्थखानि, सद्‌जन ज्ञानी गुणी,
एकवाक्ये कहिलेन ताँरा।
सामान्य ए नर नय, गौर कृपासिद्ध हय,
अनन्त सद्‌गुणेर पारा।।
कानुप्रिय दयामय, दयार सागर हय,
मिष्टभाषी सर्वप्रियजन।
हरिकथा प्रचारिते, यान देशविदेशेते,
वाग्मिताय हरे सब मन।।

इनके ग्रंथों को पढ़कर विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला कि, ये सामान्य जन नहीं हैं, बल्कि गौरकृपा की सिद्ध मूर्ति हैं।

आप दया के सागर हैं, मिष्टभाषी और सर्वजन प्रिय हैं। हरिकथा का प्रचार करने के लिये अनेक प्रान्तों में जाते हैं, इनकी वाणी सुनकर सभी मोहित हो जाते हैं।

किवा से रूप लावण्य, हेरि सवे करे मान्य,
गौरवर्ण हय ताँर अंग।
अति शिशुकाल हते, निरजने एकमते,
ग्रंथ लेखे नाहि अन्य संग।।
पुत्रेर देखिया गुण, पिता ताँर कहिलेन,
भक्ति शास्त्रे हइवे पण्डित।
निज स्वार्थ ना देखिया, प्रचार करिवे इहा,
सवाकार हइवे वन्दित।।

आपका कितना सुन्दर गौरवर्ण स्वरूप है, कि देखते ही श्रद्धा हो जाती है। अल्प बाल्यावस्था से ही ग्रंथ लेखन कार्य का गुण देखकर आपके पिताश्री ने कहा था, कि ये भक्ति शास्त्रों का सुविख्यात विद्वान पण्डित होगा। हरिकथा व ग्रंथों का निष्काम प्रचार-प्रसार करेगा। सभी लोग इसकी वंदना करेंगे।

शैशवकाल हइते, चले प्रभु भक्तिपथे,
सुचरित्र ताँहार जीवन।
पौगण्ड वयस काले, यान प्रभु नीलाचले,
तथाय हय गौर दरशन।।
कैशोरेते एकदिन, स्वप्नेते देखिलेन,
सन्मुखे दाँडाये सीतानाथ।
श्रीचरणे प्रणमिले, मस्तके श्रीचरण तुले,

श्रीअद्वैत करेन आशीर्वाद।।

शिशुकाल से ही ये भक्तिपथ पर चलने लगे। पौगण्ड काल में आप श्रीजगन्नाथपुरी आये। यहां आपको श्रीगौरांग देव के दर्शन प्राप्त हुये। किशोरावस्था में एकदिन आपको स्वप्न में श्रीअद्वैत प्रभु के दर्शन हुये। आपने उनके श्रीचरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। तदुपरान्त श्रीअद्वैत प्रभु ने आपको आशीर्वाद प्रदान किया।

लाभ पूजा मान भये, थाके प्रभु निरालाय,
आविष्ट रहेन भजनेते।
इष्ट गौरराय हरि, निज हाते सेवा करि,
ग्रंथ लेखन वसिया धामेते।।
जीवेर स्वरूप आर, नामचिन्तामणि सार,
श्रीभक्तिरहस्य कणिका।
श्रीनामापराध दर्पण, वैजयन्तिमाला आस्वादन,
श्रीरागभक्तिरहस्य दीपिका।।

ये लाभ पूजा प्रतिष्ठा को छोड़कर एकांत में रहकर भजन करते थे। अपने इष्ट श्रीगौरराय की अपने हाथों से सेवा करते हुये, भक्ति ग्रंथों का लेखन करते रहते थे।

श्रीनाम चिंतामणि, जीवेर स्वरूप ओ स्वधर्म, वैजयन्ती माला, रागभक्ति रहस्य दीपिका, भक्ति रहस्य कणिका व नामपराध दर्पण, ग्रंथ की रचना की।

एइ सब ग्रंथ ताँर, भक्ति सिद्धान्त सार,
भजनेर करे उद्दीपन।

मग्न सदा भजनेते, तत्त्व चिन्ते मग्नचिते,
श्रीगौररराये आत्मसमर्पण।।
वत्सरेर प्रथमदिने, महाप्रभु दरशने,
यान तिनि भावाविष्ट हये।
गौर दरशन करि, देन तथा गडागडि,
नेत्रजले वस्त्र भिजि याये।।

इन ग्रंथों के द्वारा अपने भक्ति के सार सिद्धान्तों का वर्णन किया। ये ग्रंथ भजन का उद्दीपन कराते हैं। आप सदैव भजन में ही मग्न रहते थे और मग्नचित्त होकर भक्ति-तत्त्व का चिंतन करते हुये श्रीगौरराय की अति समर्पित भाव से प्रीतिमयी सेवा करते थे।

बैशाख मास के प्रथम दिन ये धामेश्वर महाप्रभु के दर्शन करके भावाविष्ट हो जाते थे और नेत्रों से इतने अश्रु प्रवाहित होते थे, कि आपके वस्त्र भीग जाते थे।

नवद्वीपे दीर्घकाल, भजने काटान काल,
धामनिष्ठ आदर्श एकजन।
एकतत्त्व दुइ धाम, ब्रज नवद्वीप ग्राम,
भक्ति ब्रजे अविचल मन।।
तेरश विराशि सने, श्रावणेर पनेर दिने,
कृष्णपक्ष नवमी से तिथि।
भजन समापन करि, श्रीगौरगोविन्द नामस्मरि,
नित्यलीलाय हल ताँर गति।।

नवद्वीप में आपकी धामनिष्ठा अद्वितीय थी। बहुत समय तक नवद्वीप में ही विराजमान रहे और वृन्दावन और

नवद्वीप को एक ही तत्त्व जानकर सदैव नवद्वीप में ही निवास करते थे।

बंगाब्द १३८२ श्रावण के कृष्णपक्ष की नवमी तिथि को भजन विश्राम करके श्रीगौरगोविन्द का नाम स्मरण करते हुये नित्य लीला में प्रवेश किये।

श्रीनामेर उच्चनादे, भकतमण्डली काँदे,
हा! हा प्रभु! केन दिला फाँकि।
थाकिव काहारे निया, केवा जुडाइवे हिया,
कोन सुखे भवमाझे थाकि।।
केइवा शुनावे आर, नामेर महिमा सार,
केइवा देखावे नव आलो।
वैष्णवेर भाग्याकाशे, हयेछिल परकाशे,
आजि हाय अदर्शन हल।।
हे नामविज्ञानाचार्य, हा प्रभु वैष्णवाचार्य,
निजगुणे दाओ दरशन।
अधम पतित आमि, दयार ठाकुर तुमि,
'किशोर' शिरे दाओ श्रीचरण।।

भक्तवृन्द आपके नित्य लीला गमन होने पर विरह में आर्तनाद करने लगे और उच्च स्वर से नाम करते हुये बोलने लगे–

हे प्रभु! आप छल करके क्यों चले गये? किस सुख से इस संसार में रहेंगे? कौन हरिनाम की महिमा को सुनाकर हमको नई दिशा दिखलायेगा?

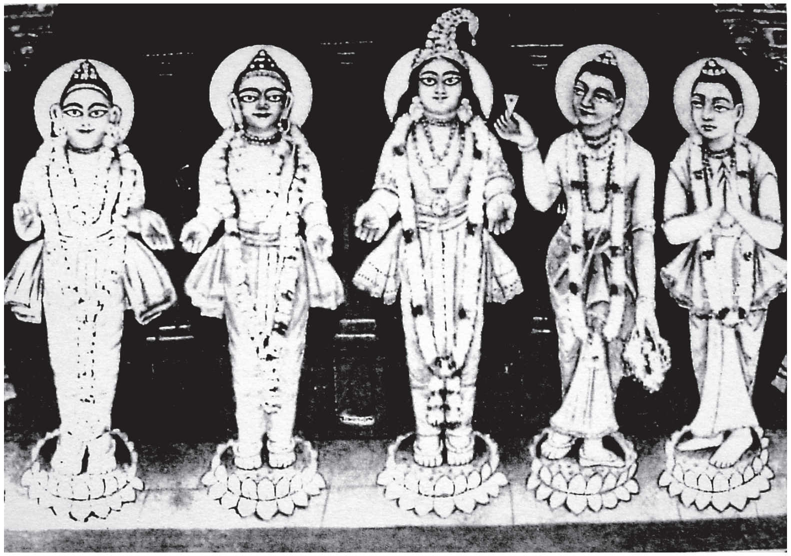
वैष्णवों के भाग्याकाश में आप उदय हुये और दुर्भाग्य से अब आपके दर्शनों से हम वंचित हो गये।

हे नाम विज्ञानाचार्य! हे वैष्णवाचार्य प्रभु! अपने कृपागुण से आप हमें पुनः दर्शन दीजिये। मैं अधम पतित हूँ।

हे अधम को पावन करने वाले प्रभु! इस किशोरराय के मस्तक पर अपने श्रीचरणकमल रख दीजिये।

–श्रीचरणाश्रित
किशोरराय गोस्वामी
नवद्वीप

नोट– 'श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामीर जीवनालेख्य' ग्रंथ के पृष्ठ संख्या २४५–२४८ से उद्धृत। यह ग्रंथ 'श्रीगौरराय सेवाकुंज' प्राचीन मायापुर दक्षिण नवद्वीप, नदिया से प्रकाशित है।



नामविज्ञानाचार्य श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद की संक्षिप्त जीवनी

जो लोग जगत् के मंगल के लिए हर युग में इस धरा पर अवतरित होते हैं उन भगवत्प्रेरित या चिन्हित महापुरुषों की संख्या अत्यन्त विरल है। इसीलिए शास्त्र कहते हैं–

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठ प्रिय दर्शनम्।।

(श्रीमद्भागवत ११.२.२९)

अर्थ– अनित्य होने पर भी मनुष्य जन्म प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है, पर उससे भी दुर्लभ है भगवत्प्रिय भक्तों का दर्शन प्राप्त करना।

श्रील कानुप्रिय गोस्वामी का जन्म श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के प्रिय पार्षद श्रील सदाशिव कविराज के वंश में हुआ था।

श्रील कानुप्रिय गोस्वामी के जीवनी को पढ़ने से पूर्व श्रील सदाशिव कविराज की महिमा को जान लेना अति आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं गौर पार्षद के पावन वंश में कानुप्रिय गोस्वामी का जन्म हुआ है।

श्रील सदाशिव कविराज श्रीमन्महाप्रभु के अतिप्रिय पार्षद थे। इनके बार में श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि खण्ड–११ प०) में लिखा है–

श्रीसदाशिव कविराज वड महाशय।
श्रीपुरुषोत्तमदास ताँहार तनय।।
आजन्म निमग्न नित्यानन्देर चरणे।
निरन्तर बाल्यलीला करे कृष्ण सने।।

ताँर पुत्र महाशय श्रीकानु ठाकुर।
याँर देहे रहे कृष्ण प्रेमामृत पुर।।

श्रील सदाशिव कविराज एक प्रमुख वैष्णवाचार्य हैं, इनके पुत्र श्रील पुरुषोत्तमदास हैं। वे श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरण सेवा में निमग्न व श्रीकृष्णलीला आस्वादन में डूबे हैं। उनके पुत्र श्रील कानुठाकुर हैं, जिनके देह में कृष्णप्रेम विद्यमान है।

श्रील सदाशिव कविराज ब्रज की श्रीचन्द्रावली सखी के अवतार हैं। यह बात ‘श्रीगौरगणोद्देश दीपिका’ श्लोक संख्या १५६ में लिखी है–

पुरा चन्द्रावली यासीद् ब्रजे कृष्णप्रियापर।
अधुना गौड़देशेहसौ कविराजः सदाशिवः।।

इन्हीं श्रील सदाशिव कविराज के पुत्र श्रीपुरुषोत्तम दास हुये। ये श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रिय द्वादश गोपाल पार्षदों में से एक हैं। ये श्रीकृष्ण के सखा स्तोक कृष्ण अवतार हैं।

यह बात ‘गौरगणोद्देश दीपिका’ श्लोक संख्या १३० में लिखी हुई है–

स्तोक कृष्णः सखाप्रागयोदासः श्रीपुरुषोत्तम।

इन्हीं श्रीगौर पार्षदों के पावन में श्रील कानुप्रिय गोस्वामी का जन्म हुआ। उनमें अपने पूर्वज महापुरुषों की कृपा से जन्मजात ही भक्ति के लक्षण विद्यमान थे।

नामविज्ञानाचार्य श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद ऐसे ही दुर्लभ महात्मा थे। १६वें कार्तिक को सन् १९९१ में उत्तर कोलकाता के सिमला काँसारी मोहल्ले में मामा के घर उनका आविर्भाव हुआ। आप परमसुन्दर और दर्शनीय तेजोमय थे, उज्ज्वल गौरवर्ण के थे।

बचपन से ही उनके चरित्र में गम्भीरता थी, सदाचार के प्रति आग्रह और भक्ति के संस्कार थे। आपने अपने उत्तराधिकारी और मंत्रशिष्य श्रील किशोरराय गोस्वामी (भ्रातुष्पुत्र) को अपने जीवन की कुछेक स्मरणीय घटनायें बताईं–

एकबार भाजनघाट पर नाव में वे अकेले थे। नाव में पिताश्री का बहुत बड़ा पुस्तकालय था। उस समय उनकी उम्र १८–१६ वर्ष की थी। वे संध्या के पश्चात् नाव में बैठे श्रील जीव गोस्वामिपाद का षट्सन्दर्भ ग्रंथ पढ़ रहे थे। समझ में कुछ नहीं आ रहा, फिर भी पढ़ रहे हैं। आँखें तन्द्रा से भर गईं। वे ग्रंथ रखकर बिस्तर पर लेट गये। तन्द्रा में ही स्वप्न देखाकि श्रीअद्वैत प्रभु उनके सन्मुख प्रकट हुये; उनके चरणों में अँगूठे वाली पादुकायें हैं। उन्हें देखकर आपने प्रणाम किया। उन्होंने पादुकाओं सहित अपना चरण उनके मस्तक पर रखकर कहा–

‘‘अब धर्मग्रंथों के दुरूह सिद्धान्त तुम्हारे हृदय में स्वतः प्रकाशित होंगे।’’ यह कहकर वे अदृश्य हो गये। आपकी नींद टूट गई। वे सोचने लगे, कि यह कैसा स्वप्न? श्रीअद्वैत प्रभु की कैसी करूणा?

वे उसी समय ग्रंथ खोलकर पढ़ने लगे। पहले जो बातें उन्हें समझ में नहीं आ रही थीं, अब वे सब सहज–सरल हो गईं। यह कहना ही पर्याप्त है, कि आपने अपने जीवन में कभी किसी पण्डित के पास शास्त्रग्रंथ नहीं पढ़े, किन्तु शास्त्रों के जटिल सिद्धान्त उनके आगे सहज–सरल रूप से प्रकाशित होते गये। यही कारण है, कि आपने शास्त्रों के समस्त जटिल सिद्धान्तों का समाधान कर ‘जीवेर स्वरूप ओ, स्वधर्म’, ‘श्रीनामचिन्तामणि’ (तीन खण्ड), ‘श्रीभक्ति

रहस्य कणिका’, ‘वैजयन्ती’ प्रबन्धमाला इत्यादि अमूल्य भक्तिग्रंथ रचे हैं।

श्रील अतुलकृष्ण गोस्वामी प्रभुपाद, श्रील जीव गोस्वामी प्रभुपाद, श्रील प्राणगोपाल गोस्वामी प्रभुपाद, श्रील प्राणकिशोर गोस्वामी प्रभुपाद, श्रील विमानविहारी मजूमदार, श्रील रसिकमोहन विद्याभूषण, श्रील सुन्दरानन्द विद्याविनोद, श्रीयुक्तप्रमथनाथ तर्कभूषण, श्रीमत् सत्यानन्द गोस्वामी प्रभुपाद, श्रील राधाविनोद गोस्वामी, श्रील राधागोविन्दनाथ आदि विख्यात विद्वान गोस्वामियों और बाबाजीगण से आपका प्रगाढ़ प्रेम था। इनके साथ समय–समय पर आप सत्संग गोष्ठी भी करते थे।

आपके दादा (पितामह) श्रील गोपीमोहन राय उस समय के विख्यात कविराज (वैद्य) थे। उनके अस्वस्थ होने पर चिकित्सकों के निर्देश पर परिवार के लोग उन्हें जगन्नाथपुरी धाम ले गये। चूँकि आप सभी के बड़े लाड़ले थे, उन्हें भी दादाजी के साथ ले गये। तब आपकी उम्र ७–८ वर्ष की थी।

पुरी पहुँचकर समुद्र के किनारे एक मकान किराये पर लिया। जब सब समुद्र की सुन्दरता देखने में मस्त थे, आपके प्राण श्रीजगन्नाथ–दर्शन के लिए व्याकुल हो उठे। श्रीजगन्नाथ–दर्शन की ओर अन्य किसी का ध्यान ही नहीं। दो–तीन दिन बीत गये, तो आप किसी को कुछ बताये बिना ही अकेले समुद्र के किनारे–किनारे श्रीजगन्नाथ–दर्शन के लिए चल पड़े। दूर से श्रीमन्दिर का चूड़ा देखकर उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। धीरे–धीरे मन्दिर के निकट पहुँचकर कुछ हक्के–बक्के हो गये। ठीक उसी समय एकाएक नयी

उम्र के एक सुदर्शन संन्यासी ने आकर उनका हाथ पकड़कर कहा–

''बेटा! तुम श्रीजगन्नाथ–दर्शन करोगे, चलो, मेरे साथ।'' यह कहकर उसने आपका हाथ पकड़ा। मन्दिर के भीतर गरुड़स्तम्भ के निकट पहुँचकर बोला– ''वह देखो, सामने ही जगन्नाथ हैं और... महाप्रभु इस गरुड़स्तम्भ के पास खड़े होकर जगन्नाथ–दर्शन करते थे।''

आपको बड़ा आनन्द आया। बड़े आग्रह के साथ जगन्नाथ के दर्शन करने लगे। एकाएक पीछे मुड़कर देखा– वह संन्यासी नहीं हैं। इधर–उधर खोजने लगे, पर वह कहीं न मिला। वे जगन्नाथ से ज्यादा उस संन्यासी की बात सोचने लगे। यथा समय घर लौटे। यह भी आश्चर्य की बात कि वे इतनी देर घर पर न थे, फिर भी किसी ने नहीं पूछा कि, तू कहाँ था?

कुछ दिन बाद आपके पिताश्री उन्हें लेने पुरी गये। उन्हें देखकर आपने बड़े आनन्द से उस दिन की उस अलौकिक घटना के विषय में बताया। सुनकर पिताश्री बोले–

''चल तो, मुझे बता, वे संन्यासी कहाँ मिले थे?'' पिता–पुत्र दोनों निकल पड़े। सब देखकर पिताश्री ने कहा–

''तुम्हारा परम सौभाग्य है। वे साक्षात् महाप्रभु थे। तुम्हारा आग्रह–उत्कण्ठा देखकर तुम्हें दर्शन दिये।''

पचास के दशक में आप जब कोलकाता रहते थे, उनकी चारों ओर अत्यधिक प्रसिद्धि थी। वे अनंगमोहन हरिसभा के प्रतिष्ठाता–सभापति और चालता आगान वैष्णव सम्मिलनी के सहसभापति थे। पेण्टाइन लेन हरिसभा, बाग बाजार हरिसभा, वाराणसी घोष स्ट्रीट में कोलकाता हरिभक्ति प्रदायिनी सभा, बेहाला दासनगर हरिसभा, हावड़ा वैष्णव

समाज आदि प्रतिष्ठानों के नियमित वक्ता थे। इन प्रतिष्ठानों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े थे। कलकत्ता में वाराणसी घोष लेन के निजी आवास पर और इससे पूर्व सिमला स्ट्रीट की डिस्पैन्सरी में नियमित रूप से शाम को पाँच से सात बजे तक भक्तों के साथ समागम करते। आप हरिकथा का प्रवचन करते, पाठ–वक्तृता कर आपने कभी–भी, कहीं–भी, किसी–भी दिन दक्षिणा के रूप में एक पैसा भी नहीं लिया। वे कहते कि धर्म बेचा नहीं जाता। कोई विशेष आग्रह अनुरोध करता, तो कहते–

''मेरे गुरुदेव का आदेश है, हरिकथा–पाठ व भागवत–प्रवचन कर रुपया–पैसा मत लेना।'' वे केवल आने–जाने का पाथेय मात्र स्वीकार करते, पर रुपया–पैसा सामान्यतः अपने हाथ से स्पर्श न करते। ठाकुर सेवा और ग्रंथ–प्रकाशन के लिए, अत्यन्त अंतरंग कुछेक विशेष लोगों को छोड़कर अपने शिष्य–भक्तों से भी पैसा न लेते।

वे फिर कहते– ''सुनो, पिताश्री के नित्यधाम पधारने के बाद मुझे कैसे अभाव–असुविधाओं का सामाना करना पड़ा था। छोटे भाई–बहन तो तब बच्चे थे। आपदा–विपदा का वह तूफान मेरे सिर के ऊपर से निकला। मैंने शुरु से ही श्रीगौरराय जी का भरोसा किया, तभी तो उन्होंने उस दुर्दिन में भी हम लोगों की रक्षा की। चारतला में था, गाछतला में उतर आया। ठाकुर को पकड़ रखा था, तभी तो उन्होंने वापस चारतला में पहुँचा दिया।''

इनके प्रिय ग्रंथ हैं उनका नाम निम्नवत् हैं– श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्, श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीचैतन्यभागवत, श्रीकृष्णप्रेम तरंगिणी, श्रीभक्तमाल, श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, श्रीभक्तिरत्नाकर, श्रीकृष्ण कर्णामृत, श्रीप्रेमभक्तिचन्द्रिका,

श्रीमद्भगवद्गीता व श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध का ही विशेष रूप से अध्ययन करते रहते थे।

आपके अनुगत भक्तवृन्द के सशक्त अनुरोध पर प्रायः ही बाहर हरिसभा में प्रवचन के लिए जाना पड़ता। इसके अतिरिक्त बीच-बीच में काँथि, ढाका, नवद्वीप, रंगपुर, तमलुक आदि स्थानों पर भी जाना पड़ता। प्रसंगवश ढाका हरिसभा की एक घटना यहाँ स्मरणीय है। आपके असंख्य भक्तों के आगे धर्मक्षेत्र में कलि के प्रभाव की बात समझा रहे हैं। एकाएक देखने में आता है, कि आगे बैठे हुए श्रोताओं में से एक भीषण दर्शन, प्रायः पागल-सा दिखने वाला, लाल-लाल आँखों वाला व्यक्ति उठ खड़ा होता है। चीखकर कहता है-

'कलि! कलि!! कलि!!! हाँ.....।' यह कहकर वह पीछे मुड़कर श्रोताओं को लाँघता-धकेलता अति द्रुतगति से दौड़ता बाहर चला गया। सभी लोग थोड़ी देर तक स्तम्भित बने रहे। आपने स्वाभाविक रूप से अपना प्रवचन पूरा किया। फिर बोले-

''वह आदमी साक्षात् कलि ही था, अपने विरुद्ध वह सब बातें सहन नहीं कर सका....।''

हरिसभा की एक घटना प्रभुपाद के चरित्र की एक अन्य विशिष्टता बताती है। वे पुलिस कमिश्नर श्रीहरिसाधन चौधुरी महाशय की पहल पर कुछेक दिनों के लिए वहाँ गये थे। संध्या के समय कुछ एक साथियों के साथ सभा में पहुँचकर देखते हैं, कि विशाल पण्डाल में हजार से ज्यादा लोग हैं। सभा के बीच में वक्ता का आसन है, उसे घेरे महिला श्रोताओं का समावेश है। उनके पीछे वृत्ताकार बैठे हैं

पुरुष। देखकर आप सभा के छोर पर ही खड़े हो गये। विस्मित आयोजकों से बोले-

''मैं इस सभा में महिला-मण्डली के बीच बैठकर प्रवचन नहीं दे सकता; मुझे क्षमा कीजिये।'' आयोजकों में से एक ने कहा- ''क्यों, पिछले कई दिनों में अनेक वक्ताओं ने यहाँ सभा की है।''

आपने विनीत भाव से उत्तर दिया- ''वे समर्थ पुरुष हैं, प्रणम्य हैं। वे जो कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता। मेरे गुरुदेव ने निषेध किया है। मुझे क्षमा कीजिये।'' भक्तवृन्द के प्रबल अतिशय आग्रह पर आपने 'पिन-पतन नीरवता' (पिन ड्रॉप साइलेन्स) के बीच पण्डाल के छोर पर खड़े-खड़े ही बिना माइक के लगभग डेढ़ घण्टा भाषण दिया।

प्रभुपाद ने जीवनभर हरिनाम का उपदेश दिया। अपने आचरण द्वारा भी वही दिखा गये। भजन-पथ पर कलि का प्रधानतम अस्त्र है 'नामापराध'। वे उन्हीं दशविध नामापराधों के विषय में सतर्क होकर नाम करने के लिए कहते। हरिसभा की बैठकों में जब भी कोई व्याख्या करते, आदि-मध्य और अन्त्य में नाम की श्रेष्ठता और निरपराध होकर नाम का आश्रय लेने की बात कर सभी की चेतना जगा डालते। वे हरिसभा की बैठकों में लीलाकथा की व्याख्या न करते; शास्त्रों के दुरूह सिद्धान्तों की व्याख्या करते। एकबार किसी भक्त ने प्रभुपाद से कहा-

''प्रभु! एकदिन हम लोगों को रासलीला के विषय में कुछ सुनाइये।'' इसके उत्तर में उन्होंने कहा- ''हम लोग नाम के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते; इस जीवन में नाम को अच्छी तरह जान लें। नाम ही हमारे हृदय में रासलीला को

समझा देंगे। किसी को लीलातत्व जानने की आवश्यकता न रहेगी।''

एकदिन आपने कुछेक अंतरंग भक्तों के आगे गोवर्धन लीला की व्याख्या की। कैसी अपूर्व व्याख्या! फिर बोले- ''मैं क्या लीला के विषय में बता नहीं सकता? पर लीला की बात का कोई लाभ नहीं। जब तक चित्त निरपराध नहीं होता, लीला सुनने से कोई लाभ नहीं होगा। अभी हमें आवश्यकता है यह देखने की, कि निरपराध कैसे हुआ जाये। सबसे पहले हमें नामापराध जानना आवश्यक है।''

आप अंतरंग जनों को उपदेश देते- ''साधु सजकर विषयी होने से बढ़कर दुर्भाग्य और कुछ नहीं। विषयी सजना (विषय-भोगी होने का दिखावा करना), पर विषयी बनना नहीं। और...... साधु बनना, पर साधु सजना नहीं।''

आपका भजन-जीवन सम्पूर्णतः श्रीमन्महाप्रभु के भावादर्श और षड्गोस्वामिगण के आनुगत्य से गठित था। वे जीवनभर श्रीगौरराय जी (श्रीगौरगोविन्द), श्रीगिरिधारी और शालिग्राम शिला की सेवा करते आये हैं। जीवन के अन्तिम दिन तक वे सदा सम्पूर्ण रूप से धन और यश दोनों की ही उपेक्षा करते रहे।

गौड़ीय वैष्णव समाज में उनकी जो ख्याति और सम्मान था, उससे वे इच्छा करते ही, सहज में ही, लाखों से अधिक शिष्य, प्रचुर धन-सम्पत्ति और बड़ा मठ-आश्रम तैयार कर सकते थे, पर ख्याति के शीर्ष पर पहुँचकर भी वे सबकुछ छोड़कर श्रीगौरराय जी को वक्ष से लगाये गूढ़-एकांत वास की इच्छा से नवद्वीप श्रीश्रीगौरकिशोर शांतिकुंज आश्रम चले आये। ऐसा आपका त्याग वैराग्य था।

आप कहते- ''पंच 'नि' (निःसंग, निर्जन, निरपेक्षा, निरुद्वेग, निरभिमान) नहीं हों, तो भजन में काल-कृत बाधा आ सकती है। सबसे बड़ी बात तो यह है, कि निरपराध होकर नामाश्रय में रहकर भजन करेंगे, तो श्रीनाम की कृपा से साधक 'पंच-नि' अवस्था प्राप्त कर सकेंगे।''

आपने निरन्तर नामानुगत्य में, नामाश्रय में रहते हुए, सहज-स्वाभाविक भजन-प्रणाली अपनाकर, संसार में रहकर भी वास्तविक अनासक्ति के साथ अपना सुदीर्घ जीवन व्यतीत किया। इस विषय में कहीं-भी, कभी-भी किंचित् विच्युति घटित नहीं हुई।

सन् १९७४ से ही आपका शरीर दुर्बल और अस्वस्थ होने लगा, पर उन्होंने श्रीश्रीगौरराय की सेवा पूजा एकदिन भी नहीं छोड़ी। शारीरिक दुर्बलता के कारण सभी कामों में देर हो जाती।

सन् १९७६ में अस्वस्थता-दुर्बलता इतनी बढ़ गई, कि श्रीश्रीगौरराय जी की सेवा-पूजा पूरी कर भोगराग आदि सम्पन्न करते-करते शाम के चार बज जाते। शारीरिक व्याधि के कारण उन्हें बाध्य होकर अन्तिम कुछ महीने सेवा-पूजा छोड़नी पड़ी। नियमित पूजा-आन्हिक स्मरण फिर भी करते रहे। नवद्वीप के श्रील तीनकौड़ी गोस्वामी (श्रील किशोरीकिशोरानन्द जी के साथ आपका जीवन के अन्तिम अवस्था में मिलन हुआ। वे आपको 'दादा प्रभु' बोलकर पुकारते थे। आपके वियोग में उन्होंने वृन्दावन में ६४ महन्तों को भोग निवेदित किया था।

सन् १९७६, १९वां श्रावण शुक्रवार का दिन आ गया भोर से ही श्रील जीव गोस्वामी आदि असंख्य भक्त आ रहे हैं; श्रीहरिनाम की उच्च ध्वनि हो रही है। नाड़ी क्षीणगति से

चल रही है। आपने अंगुलियों पर नाम-जप कर रहे हैं। जैसे ही दस बार नाम जप पूरा हुआ, नाड़ी भी बंद हो गई। समय था सुबह ७:४०। श्रीमहामंत्र नाम की ध्वनि के बीच आप सबको छोड़कर नित्यलीला में चले गये। देखते-देखते यह संवाद चारों ओर पहुँच गया। आपका आदेश था-

''उनके अनुगत भक्तों में जिन्हें जो नाम रुचिकर है, वे 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानंद, हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधागोविन्द' नाम का एवं एक दल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करें।''

उनकी आज्ञानुसार यही हुआ। पहले दल ने 'गौर हरि बोल' नाम किया, दूसरे ने 'हा गौरांग', तीसरे ने 'हरे कृष्ण' महामंत्र। सबसे पीछे 'श्रीकृष्णचैतन्य...... श्रीराधागोविन्द' नाम करते हुए गोस्वामीजी को गंगाजी की ओर ले गये। असंख्य लोग, भक्तजन मन्दिरों से माला लाकर गोस्वामीजी के ऊपर फैंकने लगे, लगा जैसे डोले में ठाकुर का प्रियजन ठाकुर से मिलने के लिये जा रहा हो।

नोट- श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामीर संक्षिप्त जीवनालेख्य' ग्रंथ के सारांश से उद्धृत। यह ग्रंथ 'श्रीगौरराय सेवाकुंज' प्राचीन मायापुर दक्षिण नवद्वीप, नदिया से प्रकाशित है।

तत्कालीन और परवर्ती समय के विख्यात विद्वानों के श्रील कानुप्रिय गोस्वामी के महिमा सम्बन्धी-लेख

(१)

नाम विज्ञान वैचित्री विचाराचार्य विग्रहम्।
गोस्वामिप्रवरं वन्दे श्रीमत् कानुप्रिय प्रभुम्।।

नामरूपी विज्ञान के अद्भुत विचार करने के आचार्य में स्थित श्रीमत् कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद की मैं वन्दन करता हूँ।

-श्रीमत् सुन्दरानन्द विद्याविनोद
नवद्वीप, कोलकाता
भक्तिसुधा तरंगिणी २६ पृष्ठ से उद्धृत

(२)

श्रीकानुप्रिय गोस्वामी-भाजनघाट के सुप्रसिद्ध सर्वजन प्रिय चिरकुमार वैष्णवाचार्य थे। श्रीभागवतामृतकणा, जीवरे स्वरूप और स्वधर्म, श्रीनामचिन्तामणि प्रभृति ग्रंथ के प्रणेता थे।

-श्रील हरिदास दास जी महाराज
हरिबोल कुटीर, नवद्वीप
गौड़ीय वैष्णव जीवन-४२७

(३)

''ग्रंथकार श्रील कानुप्रिय गोस्वामिपाद ने जब जिस विषय में हाथ डाला है, उसी में भाव का नूतनत्व और चिन्तन का मौलिकत्व अत्यन्त स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ है; यह अन्य अति विरल है। आपके व्याख्यान-कौशल से अत्यन्त सूक्ष्म तथ्य युक्त सिद्धान्त भी जनसाधारण को

बोधगम्य हुए हैं। उपमा उदाहरण आदि एवं सुललित सुमधुर भाषा के सौन्दर्य से प्रबन्धों को पाठकों के लिए चित्ताकर्षक बना देना आपकी एक प्रमुख विशिष्टता है।''

–श्रील रसिकमोहन विद्याभूषण

कोलकाता, नवद्वीप

(४)

''श्रीमान् कानुप्रिय गोस्वामी को मैं बचपन से जानता हूँ। इनके इन्द्रियसंयम, आत्मसंयम, आकुमार ब्रह्मचर्य, भोगलालसा–त्याग आदि सद्गुण तरुणावस्था से ही विशेषरूप से विकसित थे। इन्होंने किसी गुरुकुल, विश्वविद्यालय या चतुष्पाठी में शिक्षा ग्रहण नहीं की, किन्तु पूर्व जन्म की अर्जित प्रतिभा के प्रभाव से और भगवत् कृपा से उन्होंने जिस विद्याबुद्धि और ज्ञानभक्ति का उत्कर्ष प्राप्त किया है, वह अनेक सुशिक्षित व्यक्तियों में भी बड़ा विरल है। इनकी बोलने की शैली का प्रवाह गंगा–यमुना के प्रवाह की तरह धाराप्रवाह किन्तु शब्दशुद्धि पूर्ण और भावशुद्धि पूर्ण है। उसमें किसी प्रकार की असम्बन्धभाविता, उद्देश्य भ्रष्टता, कर्णकर्कशता या अनावश्यक वाग्व्यवहार आदि आवर्जना का लेशभास भी नहीं मिलता। वक्तृता के बाद बहुत समय तक भावरसग्राही सुशिक्षित श्रोताओं के कानों में उस वक्तृता की भावपूर्ण मधुर झंकार बनी रहती है।''

–श्रील रसिकमोहन विद्याभूषण

कोलकाता, नवद्वीप

(५)

श्रील कानुप्रिय गोस्वामी विरचित 'नाम चिन्तामणि' ग्रंथ को देखकर ऐसा लगता है, कि मुझे विश्वास होता है, कि साक्षात् श्रीभगवान् की प्रेरणा के बिना इसकी रचना सम्भव

नहीं है। मेरी इतनी सुदीर्घ आयु में मैंने ऐसा विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ अभी तक नहीं देखा।

–श्रील रसिकमोहन विद्याभूषण

कोलकाता, नवद्वीप

(६)

श्रील कानुप्रिय गोस्वामी विरचित 'भक्तिरहस्य कणिका' ग्रंथ का आस्वादन करके यह समझा, कि यह कणिका नहीं है, बल्कि कौस्तुभ मणि है।

–श्रील अद्वैतदास बाबाजी महाराज

चकलेश्वर, गोवर्धन



ध्यान में बैठे गोस्वामी जी

श्रील कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद विरचित
''हरे कृष्ण महामंत्र जप व कीर्तन विधान''

अतः पर एक विशेष आलोच्य विषय यह है, कि– ''द्वात्रिंशाक्षर (बत्तीस अक्षर वाले) षोड़श (सोलह) नाम युक्त हरे कृष्ण महामंत्र नाम से प्रसिद्ध कलियुग के तारक ब्रह्म नाम के सम्बन्ध में यह केवल संख्यापूर्वक मानसिक जप करने के लिये है, किन्तु संख्या सहित व संख्यारहित किसी प्रकार भी कीर्तनीय नहीं है!''– यदि ऐसा बोला जाये, तो उस विषय में सम्पूर्ण निरपेक्ष भाव से, इसका शास्त्रादि प्रमाण और शास्त्रानुकूल उक्ति द्वारा यथासम्भव संक्षेप में केवल थोड़ा-सा वर्णन किया जा रहा है।

विस्तृत आलोचना के लिए तो एक पृथक् ग्रंथ की आवश्यकता है। जैसे, प्राकृत हेय सत्वगुण जात सद्गुण कर्मादि के संयोग से ही नाम का प्रभाव व्यक्त होगा, अन्यथा नहीं– इत्यादि स्वकल्पित विधि-निषेध के बेड़ा जाल के बन्धन से नाम के स्वरूपगत मुख्य महिमा को 'गौण' करके प्राकृत हेयगुण को मुख्य मानना या कहना 'कल्पना' नामक नामापराध में गिना जाता है, यह सिद्धांत पहले ही कहा जा चुका है। उसी प्रकार जैसे नामापराध शून्य जीव द्वारा जो नाम जिस किसी भी भाव द्वारा ग्रहण करने पर उस जीव के हृदय में शुद्धसत्वमयी निर्गुणा भक्ति का उदय कर देता है एवं उसके द्वारा यथासमय तृणादपि सुनीचतादि कल्याणगुण (दीनता) का विकाश कराकर निज अचिन्त्य प्रभाव में प्रकाशित होते हैं।

'जीव के लिए वही तृणादपि सुनीचतादि कल्याणगुणों का अधिकार पहले स्वचेष्टा से अर्जन करके नाम ग्रहण

करने से फल होगा, अन्यथा नहीं होगा'– इस प्रकार के विधि-निषेध के अपने मन से कल्पना किये बन्धन द्वारा, नाम के अन्यनिरपेक्ष स्वतः सिद्ध मुख्य प्रभाव को गौण करके, नाम के अधीन 'तृणादपि सुनीचतादि' कल्याण गुणों की मुख्यता स्थापित करना भी 'कल्पना' नामक नामापराध बन जाता है।

उसी प्रकार हरेकृष्ण महामंत्र नाम के सम्बन्ध में पूर्वोक्त मन्तव्य द्वारा, नाम की अप्रतिहत उन्मुक्त महिमा को गौण व संकुचित करके जप और संख्यादि के प्रभाव को मुख्य करने जैसा कोई कारण घटित हो सकता है या नहीं– इस विषय में अब निरपेक्ष आलोचना की जा रही है।

इस विषय में सर्वप्रथम वक्तव्य यह है, कि– ''हरेकृष्ण महामंत्र-नाम संख्यापूर्वक जप योग्य है, किन्तु असंख्यात (संख्यारहित) या संख्यात (संख्यासहित) कीर्तनीय नहीं है;'' केवल यहीं तक मनन द्वारा वैसी कोई अपराध की बात नहीं उठ सकती, क्योंकि इसे निज अभिरुचि का प्रकाश मात्र कहा जा सकता है। कारण श्रीभगवान् के जिस किसी भी नाम का, जिसकी जैसी अभिरुचि हो, नाम ग्रहण में निष्ठा हो, उसके द्वारा वह नाम, उसी प्रकार ग्रहण करने योग्य है और अन्य प्रकार से ग्रहण करने योग्य नहीं है–

ऐसी विवेचना करना तो स्वयं की निष्ठा का परिचायक है और ऐसी अवस्था में वे नाम के फल लाभ में समर्थ होंगे– क्योंकि **'यादृशी रोचते नाम तत् सर्वार्थेषु योजयेत्'** ऐसा शास्त्र में ही निर्देश है। इसकी टीका में श्रील सनातन गोस्वामिपाद लिखते हैं–

''यस्य यन्नाम्नि प्रीतिः तत्ते तदेव सेव्यः।
तेनैव तस्य सर्वार्थसिद्धिरित्याह।।''

अर्थात् जिनकी जिस नाम में प्रीति है, वे उसी नाम की ही सेवा करें। उससे ही उनका सर्वाभीष्ट सिद्ध होगा।

किन्तु इस प्रकार मन्तव्य को यदि स्वकल्पित (स्वयं की कल्पना से) विधि निषेध के रूप में यदि इस प्रकार बोला जाये– ''हरेकृष्ण महामंत्र नाम केवल संख्यापूर्वक और मानसिक जप द्वारा ग्रहण करने पर ही सफल होता है, यदि यह हरेकृष्ण महामंत्र संख्यापूर्वक या बिना संख्या के ही कीर्तन कर लिया जाये, तब इस प्रकार से नाम लेना विफल होता है और उससे अनर्थादि अमंगल उत्पन्न होते हैं!''– ऐसा कहने से नाम की अवारित मुख्य महिमा को गौण करके और संख्या एवं जपादि शक्तियों को मुख्य बनाने के कारण उसके द्वारा 'कल्पना' नामक नामापराध बन जाता है।

अतः यही विवेच्य है, कि नामी और नाम सम्बन्धित श्रवण, कीर्तन, स्मरण, जप, ध्यानादि जो कोई भी प्रक्रिया हैं, उनका प्रभाव केवल नामी एवं नाम से सम्बन्ध और संयोग से ही है। उस संयोग के बिना केवल श्रवण, कीर्तन, स्मरण, जपादि आकाश के पुष्प के समान आधारहीन विषय मात्र हैं। अतः जिनके संयोग मात्र से ही कीर्तनादि प्रक्रियाएँ सिद्ध होती हैं, उन प्रक्रियाओं को प्रधान मानकर यह कहना कि जप से ही नाम फल प्रदान करेंगे, कीर्तन से नहीं; अथवा कीर्तन से ही होगा, जप से नहीं, अथवा संख्यापूर्वक नाम ग्रहण से ही होगा, बिना संख्या से नहीं,–

इस प्रकार के विधि निषेध के आरोप के द्वारा, नाम के अवारित और अनन्यापेक्षि महिमा को सुंकचित करके या बाधा डालने से नामापराध बन जाता है। इसलिये एकमात्र नामापराध-संयोग को छोड़कर श्रीभगवान् से अभिन्न तत्व श्रीभगवन्नामों में से कोई भी नाम, अपनी स्वप्रकाश महिमा

में, जीव द्वारा लिए जाने पर भले ही वह कोई भी कैसा भी व्यक्ति क्यों न हो, उसका कल्याण ही करता है।

जिस किसी-भी अवस्था में, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, जप व ध्यान आदि जिस किसी भी प्रकार से, चाहे श्रद्धा से या अश्रद्धा से, शुद्धचित्त से या अशुद्धचित्त से, ज्ञान से या अज्ञान से, भले ही जिस किसी भी भाव से लिया गया हो, वह कल्याण ही करता है।

देश, काल, पात्र, संख्यासहित या संख्यारहित किसी की-भी अपेक्षा न करते हुए नाम से स्पृष्ट होने मात्र से ही उस व्यक्ति में नाम निज निर्बाध और निरपेक्ष प्रभाव अचिन्त्य रूप से विस्तारित करते हैं। उन नाम के प्रभाव को स्वकल्पित (निज मन से की गई कल्पना द्वारा) विधि-निषेध के बेड़ाजाल में बाँधने की, जो कोई भी सुस्पष्ट चेष्टा की जाये, उसको नामापराध में ही गणना करनी चाहिये। इस बात का और अधिक उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है।

इसीलिये सभी शास्त्रों में नाम की अप्रतिहत अन्यनिरपेक्ष, अपरिसीम, असीम अनूर्ध्व-मुक्त महिमा की मुक्तकण्ठ से महिमा की है– ऐसा देखा जाता है, किन्तु शास्त्र में कहीं भी नाम की महिमा को लेशमात्र भी संकुचित करने का प्रयास दिखाई नहीं पड़ता।

इसलिये सभी शास्त्रों में जैसे एक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीनारायण-राम-नृसिंह-वामनादि समस्त भगवत् स्वरूपों में प्रकाश हुए हैं, उसी प्रकार एक कृष्णनाम का ही समस्त भगवन्नामों में प्रकाश है। समस्त भगवन्नाम एक ही हैं, इसीलिए सभी नामों का एक ही अर्थ है। उनके द्वारा एक श्रीकृष्ण ही व्यक्त होते हैं।

अतः पूर्णतम पूर्णतर महिमा की कथा में कुछ विशेष रहने पर भी पूर्ण शक्ति प्रकाश के लिए जो कोई भी भगवन्नाम हो, समान प्रभाव वाले कहे गए हैं। अतः श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, जप, ध्यान, संख्यासहित, संख्यारहित या अन्य जिस किसी भी प्रकार से, जिस किसी भी अर्थ या प्रयोजन से, जो कोई भी नाम जिस किसी भी भाव से, जिस किसी भी जीव से संस्पृष्ट होने से सर्वार्थ सिद्धिलाभ में लेशमात्र भी व्यतिक्रम नहीं होता, यदि नामापराध न हो- यही सभी शास्त्रों का मत है।

नाम की ऐसी निरंकुश मुक्त महिमा को निज मन की कल्पना के अनुसार किसी भी विधि व निषेध के आरोप द्वारा संकुचित करने की चेष्टा को शास्त्रों में 'कल्पना' नामक नामापराध में गिना गया है।

उक्त सभी विषयों पर शास्त्र प्रमाण हैं। जैसे श्रीभगवान् के सभी नाम एकार्थ वाचक हैं, अतः सर्व प्रयोजन-सिद्धि के लिए कोई भी एक भगवन्नाम भी पूर्ण फलप्रद है एवं कीर्तनीय है। शास्त्र में नाम की सर्व बन्धन मुक्त महिमा ही वर्णित हुई है-

सर्वार्थ शक्ति युक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः।
यथाभिरोचते नाम तत् सर्वार्थेषु कीर्तयेत्।।
सर्वार्थ सिद्धिमाप्नोति नाम्नामेकार्थता यतः।
सर्वान्योतानि नामानि परस्य ब्रह्मणो हरे।।

(हरिभक्तिविलास ११/१३४)

अर्थ- चक्रपाणि देवदेव श्रीहरि (आद्य हरि श्रीकृष्ण) सवार्थ शक्तिशाली हैं। उनसे अभिन्न होने के कारण, उनके समस्त नाम ही एकार्थ वाचक हैं।

अतः एक ही महिमा में सर्व उद्देश्य (प्रयोजन) के सिद्धिदाता हैं। इस कारण सभी नामों से ही जीव के सभी उद्देश्य सफल हो जाते हैं। इसलिये जिसकी जिस नाम में रुचि हो, वह निज प्रयोजन सिद्धि-हेतु उसी नाम का कीर्तन करें।

अब, यदि बोला जाये कि शास्त्र के ऐसे निर्देश कीर्तनीय (कीर्तन करने योग्य) नाम के ही सम्बन्ध में हैं; किन्तु जप्य (जप करने योग्य) नाम के सम्बन्ध में अवश्य ही विशेष विधि-निषेध होंगे!

ऐसा सोचने वालों के लिये उत्तर में यही कहना है, कि जप्य नाम के सम्बन्ध में भी सर्वनाम निर्विचार सहित जिस किसी भी नाम की एक ही अप्रतिहत महिमा घोषित होते देखी जाती है,-

सर्वाणि नामानि हि तस्य राजन्,
सर्वार्थसिद्धौ तु भवन्ति पुंसः।
तस्मात् यथेष्टं खलु कृष्ण नाम,
सर्वेषु कार्येषु जपेत भक्त्या।।

(हरिभक्तिविलास ११/१३८)

अर्थ- हे राजन्! निखिल भगवन्नाम ही उन एक श्रीकृष्ण के ही नाम हैं; इसलिये साधक की सर्वार्थ सिद्धि के लिए, सभी नाम एक ही महिमा का प्रकाश करते हैं। इसलिए सभी कार्यों व प्रयोजनों के लिए वे श्रीकृष्ण के समस्त नाम भावपूर्वक जप्य हैं।

अतः देखा जाता है, कि पूर्व श्लोकोक्त श्रीभगवान् का जो कोई भी नाम, जिस किसी भी प्रकार, किसी भी प्रयोजन से जैसे कीर्तनीय हो कसता है, एवं उसमें कोई बाधा नहीं

रखी गई है। उसी प्रकार उन श्रीभगवान् के समस्त नामों में से कोई भी नाम सभी प्रयोजनों में जप्य हो सकता है एवं उसमें भी बाधा या प्रतिबन्ध नहीं रखा गया है।

निश्चित संख्यापूर्वक मानसिक नाम ग्रहण को 'जप' हैं एवं संख्या की गणना किये बिना उच्च स्वर से बोलने पर वही नाम 'कीर्तन' हो जाता है। अतः समस्त नाम ही कीर्तन में या जप में दोनों प्रकार से ही ग्रहण करने योग्य हैं- ऐसा शास्त्रों का उपदेश है। 'यह नाम कीर्तनीय है- जप्य नहीं; या यह नाम जप्य है- कीर्तनीय नहीं'- ऐसा कोई विधि-निषेध का बंधन नाम सम्बन्ध में शास्त्रों में नहीं देखा जाता है। जिसकी जैसी अभिरुचि है, वैसे ही नाम ग्रहणीय है। इसके लिए कोई नाम के फल में अंतर या नाम का विपरीत फल भी नहीं कहा गया है।

अब, यदि यह कहा जाये कि, इस श्लोक में नाम कीर्तन एवं जप के सम्बन्ध में ही उक्त श्लोक में समानता सूचक उक्ति देखी जा रही है, किन्तु श्रवण-स्मरणादि अन्य प्रक्रिया में नाम ग्रहण के सम्बन्ध में विशेष विधि-निषेध हो सकता है!

इसके उत्तर में कहना है, कि कीर्तन एवं जप के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार नाम ग्रहण के विषय में भी, शास्त्र में कोई विशेष विधि न कहकर ही उन्मुक्त महिमा गाई गई है। इसीलिए ही नाम सम्बन्धित उक्त श्लोक के निर्देश में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन न करके श्रवणादि अन्य सभी प्रकार के नाम ग्रहण में भी समान शक्ति का प्रभाव होता है- यही बताने के लिए पूर्वोक्त श्लोकों के केवल 'कीर्तयेत्' और 'जपेत्' शब्दों के स्थान पर 'योजयेत्' शब्द का प्रयोग हुआ है अर्थात् अन्य जिस किसी भी प्रकार

नाम का संयोग होने से भी, समान प्रभाव व्यक्त होता है, यह बात ही प्रचारित हुई है, जैसे-

सर्वार्थशक्तियुक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः।
यच्चाभिरुचितं नाम तत् सर्वार्थेषु योजयेत्।।

(हरिभक्तिविलास-धृत ब्रह्माण्डपुराण ११/४०१)

अर्थ- सर्वार्थशक्तियुक्त चक्रधारी श्रीभगवान्-देवदेव उनसे उनके सभी नाम अभिन्न होने के कारण अपनी रुचि के अनुसार जो कोई भी नाम सर्वार्थसिद्धि सर्वप्रकार से ग्रहणीय है। इसकी टीका में श्रील सनातन गोस्वामिपाद ने लिखा है-

''सर्वार्थशक्तियुक्तस्येत्यनेन नाम-नामिनोहमेदान्नाम्नोऽपि सर्वस्य सर्वार्थशक्तियुक्तता सूचितैव। अभिरुचितं निजाभीष्ट्यं यन्नाम, एतच्च भक्ति विशेषेणाचिरात् सम्यक् सर्वार्थ-सद्धिमपेक्षयोक्तत्।।''

(टीका ११/१०४-पुरीदास संः)

इसलिये उक्त शास्त्र युक्त निर्देशों से अवगत हो जाता है, कि अप्रतिहत महिमा श्रीभगवान् के समस्त नाम ही समान प्रभाव वाले हैं, जिस किसी भी जीव द्वारा, समस्त श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, जप, ध्यान एवं जिस किसी भी भाव के द्वारा लिया जाता है, तो जीव का सर्वार्थ सर्वाभीष्ट पूर्ण हो जाता है, अन्य विधि-निषेध की कोई अपेक्षा नहीं है।

इसलिये यदि कोई नाम जप्य ही है- कीर्तनीय नहीं, कीर्तन में अनिष्ट साधक होगा या नाम कीर्तनीय ही है- जप्य नहीं, जप अनिष्ट उत्पादन करता है, या अमुक नाम से संख्या लेने पर ही सफल होता है, संख्या की गणना किये बिना अमंगल उत्पन्न होता है; या यह नाम केवल

श्रवण से ही, या कीर्तन से ही या जप से ही या स्मरण से ही ग्रहण करने योग्य है। अन्य प्रकार से ग्रहण करने योग्य नहीं है, उससे अशुभ होता है- इस प्रकार से कोई बात सत्य होती तो, नाम ग्रहण के सम्बन्ध में शास्त्रों में कोई विधि-निषेध अवश्य लिखा होता। तब मनुष्य-लोक में भजन-साधन विषय में जो एकमात्र पथ प्रदर्शक है और उस विषय में विधि-निषेध या कर्तव्याकर्तव्य निर्देश शास्त्र में अवश्य लिखा होता, तब नाम ग्रहण विषय में उक्त अबाध और निरंकुश सर्वप्रकार से निषेधमुक्त विधि का कभी-भी जगत में प्रचलन नहीं हुआ होता।

इसके दृष्टान्त स्वरूप कहा जा सकता है, जैसे चिकित्सक द्वारा व्यवस्थापित औषधियों में, यदि कोई औषधि केवल सेवनीय (खाने योग्य) या कोई औषधि केवल मर्दनीय (मलने योग्य), या कोई औषधि आघ्रेय (सूंघने योग्य) अथवा कोई औषधि प्रलेप में प्रयोग होने वाली हो, तो एवं उनका अन्यथा व्यवहार में विपरीत फल वा विषक्रिया की सम्भावना रहने पर, प्रत्येक औषधि की जैसे पृथक्-पृथक् ग्रहण विधि और उनमें विषाक्त औषधि होने पर सेवन में निषेध-चिह्न के साथ ये सब औषधि दी जाती हैं। नाम ग्रहण के विषय में यदि उसी प्रकार फल में अंतर और पृथक्-पृथक् ग्रहण विधि एवं उसके अलावा विपरीत फल मिलने की सम्भावना रहती, तब विधि-निषेध के प्रवर्तक शास्त्रों द्वारा स्पष्ट रूप से ही उसे बता देना उचित होता। निषेध बिना केवल विधि ही शास्त्र में विहित नहीं होती। यथायथ स्थान में विधि और निषेध का निर्देश ही शास्त्र का शास्त्रत्व है।

इसी कारण, दान, यज्ञ, स्नानादि सभी शुभ क्रियाओं यहाँ तक कि मंत्र जप में भी, कालाकालादि विधि-निषेध की

व्यवस्था सर्वशास्त्रों में मिलने पर भी, केवल एकमात्र ग्रहण विधि को छोड़कर किसी प्रकार निषेध का बंधन वा संकोचन नहीं है जहाँ, वह है श्रीभगवन्नाम ग्रहण। इसीलिए शास्त्र में अति सुस्पष्ट रूप से ही उल्लेख देखा जाता है; जैसे-

कालोऽस्ति दाने यज्ञे च स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे।
विष्णु संकीर्तन कालो नास्त्यत्र पृथिवीतले।।

(हरिभक्तिविलास ११/१८०)

अर्थ- हे राजन्! श्रीविष्णु या श्रीहरिनाम ग्रहण में देश कालादि का कोई नियम (अर्थात् विधि-निषेध) नहीं है, इस विषय में कोई संदेह न करना। संसार में दान, यज्ञ, स्नानादि अथवा मंत्र जप विषय कालादि सापेक्ष होने पर भी श्रीहरिनाम के संकीर्तन में कोई कालाकाल की अपेक्षा नहीं है।

इससे अधिक नाम स्वयं में सर्वदा सर्वप्रकार शुद्ध रहकर मंत्रादि शुभ क्रियाओं में न्यूनता या विधि-निषेध परिमाण में कोई छिद्र या असम्पूर्णता रूप कोई दोष हो जाने पर निज अमृतमय संयोग द्वारा उन क्रियाओं को जीवन दान करते हैं- 'नाम का ऐसा ही सर्वनिरपेक्ष प्रभाव है।'

मंत्रतस्तन्त्रश्छिद्रं देश कालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्तनं तव।।

(हरिभक्तिविलास ११/१८०)

अर्थ- मंत्र में स्वरभ्रंशादि द्वारा, तंत्र में क्रमविपर्ययादि द्वारा एवं देश-काल-पात्र और वस्तु में अशौचादि द्वारा जो छिद्र या न्यूनता रूप दोष उपस्थित होते हैं, निरन्तर तुम्हारा (श्रीहरि का) नाम कीर्तन द्वारा वे समुदय छिद्र रहित और दोष रहित हो जाते हैं।

ऐसी स्थिति में सब प्रकार से यही प्रतिपन्न होता है, कि नाम का कीर्तन जिस किसी प्रकार भी गृहीत होने पर उसके फल के लाभ में, शास्त्रों में कहीं भी कोई भी विधि-निषेध नहीं देखा जाता है। जैसा कि शास्त्र-विहित पूर्वोक्त मंत्रादि अन्य शुभक्रियाओं के विषय में देखा जाता है। इसीलिए सर्व शुभ क्रियादि से नाम की शास्त्र सम्मत विशिष्टता के कारण नाम-महिमा का आसन सर्वोपरि निर्धारित हुआ है।

यहाँ तक कि, नाम के साथ अन्य किसी भी शुभक्रियादि की तुलना या समानता करने मात्र से ही उसे एक नामापराध गिना जाएगा- ऐसा शास्त्रों ने सबको सतर्क किया है। (इस नामापराध पर आगे चलकर यथास्थान आलोचना होगी)

ऐसे नाम ग्रहण के विषय में यदि उसके अवारित उन्मुक्त महिमा को संकुचित करने वाला कोई भी स्वकल्पित विधि-निषेध यदि आरोपित किया जाये, वह उपरोक्त 'कल्पना' नामक नामापराध होगा- इस विषय में और अधिक बोलने की क्या आवश्यकता रह जाती है?

इसका सारमर्म यह हुआ, कि श्रीभगवान् से अभिन्न होने के कारण उनके निखिल नाम ही एक ही अर्थ बताने वाले और समान शक्ति वाले हैं। अतः सर्वार्थप्रद एवं सबके द्वारा निज अभिप्रेत कोई भी नाम सर्वप्रकार से और सर्वभाव से गृहीत होने पर (केवल नामापराध जनक विषयों से संयोग रहित रहकर) सब फल प्रदान करने में समर्थ है।

इसलिये अपनी प्रिय रुचि के अनुरूप जो कोई भी नाम, जिस किसी भी प्रकार, जिस किसी भी प्रयोजन से गृहीत होने के समय उस विषय में अंत में एक 'ही' वर्ण के

स्थान पर 'भी' वर्ण के प्रयोग मात्र से ही वैसे ही समझ लेने से संकोच (सिकुड़न) माना जाता है। नाम के मुक्त प्रभाव का किसी प्रकार का भी न तो कोई संकोच (सिकुड़न) माना जाता है, न ही निज-निज निष्ठा का ही कोई विपरीत क्रम होता है। जैसे कि 'यह नाम ही' बोलने या समझने से अन्य नाम के प्रभाव को संकोच (सिकुड़न) करने का प्रयास होता है, किन्तु 'यह नाम भी' बोलने से अन्य नाम की महिमा और निज-अभीष्ट विषय दोनों ही बातों पर महिमा का वर्णन हो जाता है और किसी का भी संकोच नहीं होता है।

इसलिये नाम सम्बन्धीय सभी स्थानों में 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग समझना आवश्यक है, जैसे कि-

'जप्य ही' के स्थान पर 'जप्य भी'
'कीर्तनीय ही' के स्थान पर 'कीर्तनीय भी'
'स्मरणीय ही' के स्थान पर 'स्मरणीय भी'
'संख्यारहित ही' के स्थान पर 'संख्यरहित भी'
'संख्यासहित ही' के स्थान पर 'संख्यासहित भी'

इत्यादि प्रकार कहने से निज निष्ठा का और नाम की महिमा का, किसी दिशा में भी संकोच (सिकुड़न) साधित नहीं होता है।

यहाँ यह प्रश्न खड़ा हो सकता है, कि श्रीभगवान् का जो कोई नाम निरंकुश महिमा में सर्वार्थ में सर्व कार्य में अतः जप में भी प्रयुक्त होने में जब शास्त्र में कोई भी बाधा नहीं दिखती है, तो केवल महामंत्र-नाम जप के लिये गृहीत न होकर निज अभिरुचि संगत अन्य कोई भी नाम ग्रहण में ही क्या बाधा रह सकती है? अथवा जप न करके केवल नाम कीर्तन करने में ही क्या प्रतिबंध हो सकता है?

इस शंका के उत्तर में यही कहना है, कि सर्वार्थ शक्तियुक्त श्रीभगवान् के अन्य किसी भी नाम को जपार्थ में भी ग्रहण करने में या जप न करके कीर्तन या अन्य प्रकार भी नाम ग्रहण करने में उस दिशा से तो कोई बाधा या भजन पथ में कोई प्रतिबन्धक न रहने पर भी, उसमें अन्य दिशा से एक विशेष विघ्न की सम्भावना यह रहती है, कि तद्रूप आचरण द्वारा नाम के बल पर सदाचार लंघन रूप पापदोष हो जाने के कारण नामापराध पर्यन्त होने की विशेष रूप से सम्भावना रहती है। क्योंकि नाम के बल पर किसी भी प्रकार पाप-दोष में प्रवृत्ति को भी शास्त्रों ने एक नामापराध कहा है। (यह परवर्ती सप्तम अपराध प्रसंग का आलोच्य विषय है)

सामान्य लक्षण में, निर्दिष्ट संख्या में नाम ग्रहण को 'जप' कहा जाता है। संख्या रहित 'जप' नहीं होता है। इस जप के लिये नाम ग्रहण करना चिराचरित 'सद्धर्म' विशेष सदाचार है। यह सदाचार स्वेच्छाकृत नहीं है। इसे शास्त्र विहित समझना होगा।

इसलिये सत्युग आदि चारों युगों में ही शास्त्र विहित चतुर्विध तारकब्रह्म नाम जप्य रूप में निर्दिष्ट है। प्रचलित पंजिका में भी यह देखा जा सकता है। कलियुग में तारक ब्रह्म नाम हैं- 'हरे कृष्णादि बत्तीसाक्षरयुक्त सोलह नाम' जो इस युग के 'महामंत्र' नाम से प्रसिद्ध हैं एवं जपार्थ यह महामंत्र ही ग्रहणीय है। अद्यावधि सद्धर्मपरायण सभी जनों द्वारा गृहीत होते आ रहे हैं।

उक्त शास्त्र विहित और वैष्णवाचार्यों द्वारा आचरित सदाचार का लंघन न करना, उसे एक भजनांग समझकर,

एक आवश्यक कर्तव्य मानते हुए; वही सदाचार निष्ठा के साथ सबके द्वारा पालनीय होकर चला आ रहा है।

इसलिये उक्त कारणवश, नाम की महिमा के बल पर जप में अन्य नाम (मंत्र) ग्रहण करना या जप त्याग करके केवल नाम संकीर्तनादि का आचरण करना, नाम के बल पर (शास्त्रोक्त) सदाचार (और निर्देश) के लंघन स्वरूप पाप में प्रवृत्ति होने के कारण वह एक स्वतंत्र नामापराध में परिणत होकर साधक के भजन पथ में दारुण अनर्थ उत्पन्न करने वाला होता है। क्योंकि नामापराध संश्लिष्ट विषयों के किसी प्रकार भी होने के अतिरिक्तनाम से सर्वमंगलोदय होने में अन्य कोई बाधा नहीं है।

इसलिए शास्त्र विहित सदाचार पालनार्थ, अन्य नाम के स्थान पर केवल 'हरे कृष्णादि' महामंत्र नाम जप रूप में सभी के लिए ग्रहणीय है एवं संख्यारहित जप नहीं होता है। अतः जप के समय इसके संख्यासहित जप करने के विषय में इसी कारण किसी प्रकार भी मत विरोध नहीं दिखता। इस महामंत्र के सम्बन्ध में यह भी कहना है, कि दीक्षा मंत्र या अन्य जो कोई भी मंत्र-जपविधि अनुसार उपांशु जप (इस प्रकार बोलना जो अपने कानों को सुनाई दे) और मन में केवल जप्य ही हैं एवं मन में किया जप ही अधिक प्रशस्त है। इसलिए वे अन्य के लिए श्रुतिगोचर-निषिद्ध हैं, वे सभी मंत्र कीर्तनीय नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त उनमें दीक्षा पुरश्चरणादि शास्त्रोक्त विधि-निषेधों की सम्पूर्ण अपेक्षा देखी जाती है। जिनके पालन वा लंघन में साधक का मंगल और अमंगल होता है। किन्तु 'कलौ तद्धरिकीर्तनात्'- नाम संकीर्तन कलियुग का युगधर्म होने के कारण, इस युग विशेष में युगधर्म का ही मुख्यतत्व

और प्राधान्य होने के कारण एवं नाम ग्रहण प्रक्रिया में नाम संकीर्तन सर्वाधिक प्रशस्त होते हुए भी (यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः। श्री भाः ११/५/३२) जप प्रक्रिया सर्वयुग का ही एक आवश्यक कर्तव्य सदाचार विशेष होने के कारण, उन वैष्णवाचार्यों के आचरण का अनुवर्ती होकर इस युग में श्रीमहामंत्र-नाम जपार्थ भी ग्रहणीय हुआ है। फिर भी अन्य सभी मंत्र से वैशिष्ट्य प्रकाश करने के लिये महा-शब्द से युक्त होकर यह हरे कृष्णादि नाम-मंत्र 'महामंत्र' नाम से कीर्तित होकर अन्य मंत्रों से इसकी महिमा विशेष रूप से दर्शित हुई है।

महामंत्र की विशेष महिमा यह है, कि सदाचार पालनार्थ नियमित संख्या नाम अवश्य करणीय बोलकर सभी के लिए जैसे जपार्थ महामंत्र ग्रहणीय होने के विषय में कोई मत में अंतर नहीं है, उसी प्रकार अन्य मंत्रों से महामंत्र की अबाध महिमा-विशेष से, यह संख्यासहित जप के अतिरिक्त भी ध्यान या स्मरण में, नाम में और कीर्तनादि सभी प्रकार निरन्तर (अर्थात् असंख्यात) ग्रहणीय कहकर शास्त्र में सुस्पष्ट रूप से ही निर्देश दिए गए हैं; जो अन्य मंत्र के सम्बन्ध में निषिद्ध हैं।

सभी प्रकार के निषेध बंधन निरपेक्षिता-यह भी महामंत्र के असाधारण महत्व का एक परिचायक है। अतः इस शास्त्र सिद्ध महामंत्र की अप्रतिहत महिमा विशेष को देखकर साधारण मंत्र से महामंत्र को समान समझकर-स्वकल्पित विधि-निषेध के बेड़ा जाल के बंधन में डालने का प्रयास किसी भी कारण शुभदायक नहीं हो सकता, यह थोड़े स्थिर चित्त से और निरपेक्ष भाव में सोचने से ही समझ में आ जायेगा।

इसीलिए शास्त्र द्वारा जप्य रूप हरिनाम अर्थात् महामंत्र की जप्यत्व विधि का निर्देश किए जाने पर भी, अन्य मंत्रों के लिए जो भी निषेध-बंधन है, महामंत्र को उन सभी से मुक्त रखते हुए महामंत्र की उसी अबाध महिमा विशेष की घोषणा की गई है।

हरेर्नाम परं जप्यं ध्येयं गेयं निरंतरम्।
कीर्तनीयंच बहुधा निर्वृतीर्वहुधेच्छता।।

(हरिभक्तिविलास ११/४८३/पुरीदास संः/जावालि संहिता वाक्य)

इसका तात्पर्य यह है, कि श्रीहरिनाम जैसे परम 'जप्य' है- जप्य शब्द से मंत्र का एवं 'परम' शब्द से महा अर्थात् महामंत्र का ही निर्देश किया गया है। यह वर्तमान युग में सर्वसम्मत जप्य 'नाम' है। वही जप्य नाम या महामंत्र पुनः अपनी प्रिय अभिरुचि और प्रयोजन के अनुरूप निरन्तर अर्थात् संख्यादि के नियम से रहित, सर्वक्षण ध्येय, स्मरणीय, गाने योग्य और कीर्तन आदि बहुत प्रकार से ग्रहणीय है।

बहुत प्रकार के आनन्द प्रदान करने के लिये महाप्रभु ने जीवों को ये दान दिया है। इसलिये वर्तमान युग में महामंत्र ही सर्वसम्मत रूप से जपार्थ ग्रहणीय है, फिर भी, यह श्रवण स्मरण और बहुप्रकार कीर्तन के लिए अबाध 'निरन्तर' अर्थात् सर्वक्षण (असंख्यात) निज-निज प्रयोजन और अभिरुचि अनुसार ग्रहणीय है, यही उक्त श्लोक से प्रमाणित होता है।

महामंत्र के विषय में और कुछ विपरीत धारणाएँ हैं और उनका खण्डन यदि केवल जप्य मंत्रों से महामंत्र के उक्त वैशिष्ट्य को न समझते हुए, उसे समान समझते हुए यदि यह बोला जाये, कि महामंत्र अन्य मंत्रों की भाँति केवल

अश्रुत रूप से जप्य ही है, यह संख्यासहित कीर्तनीय भी नहीं है!

इस शंका के उत्तर में यही कहना है, कि इस विषय में कर्तव्य सम्बन्ध में श्रील ठाकुर हरिदास का आचरण ही प्रमाण है। वे नित्य तीन लाख महामंत्र-नाम संख्यापूर्वक ही जप करते थे। उसमें एक लाख नाम उच्च कीर्तन करते हुए बहु स्थावर जंगमादि जीवों को श्रवण कराकर उनके भवपाश से उद्धार और भक्तिलाभ हेतु। उस समय कतिपय भक्ति विमुख ब्राह्मण पण्डित उस महामंत्र का कीर्तन का विरोध करते। यह कथा सब जानते हैं। अतः पुनः उल्लेख नहीं किया जा रहा है। अतः संख्यापूर्वक महामंत्र नाम के उच्च कीर्तन की विधि के सम्बन्ध में उसे ही यथेष्ट प्रमाण माना जा सकता है।

जिन श्रीठाकुर हरिदास की महिमादि के वर्णन में स्वयं महाप्रभु पंचमुख (ब्रह्म) हुए हैं और जो सर्वत्र गौर परिकर के मध्य में विशेष रूप से 'नामाचार्य' उपाधि से सम्मानित हुए हैं। उनके इस संख्यात महामंत्र के उच्च कीर्तन में अशास्त्रीय और दोषजनक कुछ भी नहीं रह सकता। इसका और अधिक उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझता हूँ। पार्षदों सहित श्रीमन्महाप्रभु के आविर्भाव के पूर्व नाम महिमा के विषय में जगत् अज्ञप्रायः रहकर नाम की मुक्त महिमा बहुत प्रकार से संकुचित करके अपराध ग्रस्त था। सपरिकर श्रीमन्महाप्रभु ने ही महिमा सहित नाम प्रचार करके जगत् को नामापराध से मुक्त किया था।

श्रील हरिदास ठाकुर का दृष्टान्त देखकर अब यदि कोई बोले, कि बिना संख्या के महामंत्र किसी भी प्रकार से ग्रहणीय नहीं है, यदि कीर्तन ही करना हो, तो भी श्रील

हरिदास ठाकुर के जैसे संख्यापूर्वक कीर्तनीय है। ऐसा मंतव्य उपरोक्त 'हरेर्नाम परं जप्यं' इत्यादि श्लोक द्वारा खण्डित हो चुका है। (हःभःविः ११/४८३/पुरीदास सं:। जावालि संहिता वाक्य) इस पर अधिक कहना अनावश्यक है। उसमें महामंत्र नाम को जप के अतिरिक्त ध्येय, गेय और निरन्तर असंख्यात कीर्तनीय भी बताया गया है। पुराण में भी महामंत्र का जप्यत्व और संकीर्तनत्व, दोनों ही सुस्पष्ट रूप से ही उल्लिखित हुआ है।

श्रीब्रह्माण्ड पुराण में श्रील लोमहर्षण जी व श्रील सूत जी के प्रश्नोत्तर के प्रसंग में स्वयं श्रील वेदव्यासजी ने कहा है-

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
इत्यष्टशतकं नाम्नां त्रिकाल कल्मषापहम्।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु विद्यते।
तन्नाम कीर्तनं भूयस्तापत्रय विनाशनम्।
सर्वेषामेव पापानां प्रायश्चित्तमुदाहृतम्।।
नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
नाम संकीर्तनादेव तारकं ब्रह्म दृश्यते।।
नाम-संकीर्तनं तस्मात् सदा कार्य्या विपश्चिता।

(ब्रह्माण्ड पुराण/उत्तर खण्ड ६/५५-६०)

अर्थ- हे सूत!

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का त्रिसंध्या १०८ बार जप करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। समस्त वेदों में इसकी अपेक्षा

श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं है। पुनराय इसी 'महामंत्र' नाम का कीर्तन ही शास्त्रों में त्रिताप का विनाशक और समस्त पापों का प्रायश्चित बोला गया है। इससे श्रेष्ठ वस्तु त्रिलोक में नहीं है। इसी नाम संकीर्तन से ही भगवान् का साक्षात्कार होता है। इसलिये यह नाम-संकीर्तन ही विवेकी विद्वान् जनों का सर्वदा ही कर्तव्य है। पद्मपुराण में श्रीील सूत गोस्वामी जी ने कहा है-

हरिनाम-महामंत्रेर्नश्येत् पाप-पिशाचकम्।
हरेरग्रे स्वनैरुच्चैनृत्यंस्तन्नामकृन्नरः।।
पुनाति भुवनं विप्रा गंगादि सलिलं यथा।

(पद्मपुराण स्वर्ग खंड आदि २४आ)

अर्थात् 'श्रीहरिनाम महामंत्र' के द्वारा पापरूपी पिशाच नष्ट हो जाता है। श्रीहरि के सम्मुख उच्च वाद्यादि के साथ व नृत्य करते हुए उनका नाम कीर्तन करने वाला व्यक्ति, भुवनपावनी गंगा की भांति पृथ्वी को पवित्र करता है।

'महामंत्र' नाम केवल जप्य ही है, इसके प्रमाण में बहुत से वैष्णवगणों का दृष्टान्त देकर यदि कहा जाये, कि- इन सभी ने संख्यापूर्वक जप रूप में ही महामंत्र को ग्रहण किया था, ऐसा जाना जाता है- जैसे श्रील वाणीनाथ द्वारा अपने शरीर पर रेखा खींचकर संख्या गिनकर महामंत्र ग्रहण करना और द्वितीय उदाहरण देवी विष्णुप्रिया द्वारा तन्दुल द्वारा संख्या रखते हुए महामंत्र ग्रहण करना अथवा माला द्वारा संख्या रखते हुए महामंत्र नाम ग्रहण करना जैसे अनेक प्रमाण पाए जाते हैं, तब यह असंख्यात (संख्यारहित ग्रहण करने योग्य) नहीं हो सकता। उक्त दृष्टान्त इसके विशेष प्रमाण है।

इस शंका के उत्तर में यही कहना है, कि पूर्व में ही बोला जा चुका है, कि सदाचार पालन हेतु जप्य रूप में महामंत्र नाम प्रतिदिन नियमित संख्या में ग्रहण करना सभी सद्धर्म परायण व्यक्तिमात्र का ही अवश्य कर्तव्य है; अन्ततः इस विषय में कोई दो मत नहीं हैं। अतः इसलिए उक्त कुछ ही दृष्टान्त क्यों? प्रत्येक स्वधर्मनिष्ठ भजनशील वैष्णव मात्र को ही अभी-भी देखा जाता है, जप के समय महामंत्र नाम ही संख्यापूर्वक ग्रहण करते हुए। क्योंकि जप के समय सभी के लिए महामंत्र ही ग्रहणीय है एवं उस प्रक्रिया में महामंत्र ग्रहण काल ही था, उन सबका जप काल जप के प्रयोजन से ही उक्त संख्यापूर्वक महामंत्र से युक्त था।

किन्तु केवल माला से जप के अतिरिक्त समय में भी यदि संख्यापूर्वक ग्रहण करते हुये देखा जाये, तब भी यह नहीं कहा जा सकता है, कि 'महामंत्र' संख्यारहित ग्रहणीय नहीं है। ऐसी बात शास्त्रों में कहीं भी देखने को नहीं मिलती है।

इसीलिए महामंत्र ग्रहण (करने मात्र) के प्रयोजन से संख्यारहित नाम ग्रहण के दृष्टान्त दिए जा सकते हैं।

जैसे- किसी मरणासन्न (मृत्यु के निकट अवस्था में पड़े हुए) व्यक्ति को नाम सुनाने के लिए किसी को भी उच्चस्वर से 'हरे कृष्ण' महामंत्र सुनाने के समय उसे संख्यारहित ही सुनाते हुये ही देखा जाता है, संख्यापूर्वक नहीं। क्योंकि किसी के भी मृत्युकाल में उस दुःख, शोक और क्रन्दन के वातावरण में निर्दिष्ट संख्या रखते हुए नाम उच्चारण नितान्त ही अस्वाभाविक है।

अतः इसलिये पूर्व वर्णित सदाचार पालन-स्थल में सर्वत्र ही संख्यापूर्वक महामंत्र ग्रहण के दृष्टान्त होने पर भी

वह संख्यारहित कीर्तनीय नहीं है, इसका प्रमाण किसी भी शास्त्र में नहीं है। जहाँ जप प्रयोजनीय है, वहाँ संख्यापूर्वक महामंत्र ग्रहणीय है, किन्तु जहाँ केवल महामंत्र ग्रहण करना ही एकमात्र उद्देश्य है, वहाँ संख्या या असंख्या की बात ही नहीं है। वे उपरोक्त दृष्टान्त यदि मरणासन्न व्यक्ति को महामंत्र-नाम सुनाने जैसी अवस्था के उदाहरण की तरह होते, तो समझा भी जा सकता था।

जो हो, उक्त विषय में विस्तार में जाकर, केवल श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख के निर्देश और उनके दिव्य आचरण से ही प्रमाणित हो सकता है- जप में महामंत्र नाम संख्यापूर्वक ग्रहणीय है, व बिना संख्या के कोई भी नियम रखकर सर्वक्षण ग्रहण करना या कीर्तन करने के भी आदेश हैं, निषेध रहित। यह देखा जाता है, कि निज पार्षदगण को नहीं, बल्कि सामान्य नागरिकगण को भी 'हरे कृष्ण महामंत्र' नाम दान करके उसके आचरण सम्बन्ध में जो कुछ भी विधि-निषेध त्याग के सिद्धान्त हैं, वे जो श्रीमन्महाप्रभु द्वारा सर्वसाधारण जीव के परममंगल उद्देश्य से ही उपदेशित हुए हैं, निम्न पयारों से वे अवगत होते हैं; जैसे-

आपने सभारे प्रभु करे उपदेश।
कृष्णनाम महामंत्र शुनह विशेष।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
प्रभु बोले कहिलाम एइ महामंत्र!
इहा गिया जप सभे करिया निर्बन्ध।
इहा हैते सर्व सिद्धि हइवे सभार।।
''सर्वक्षण बोल इथे विधि नांहि आर।।''

-श्रीचैतन्यभागवत (मध्य खण्ड २३वां अध्याय)

इससे स्पष्टतः जाना जाता है- सदाचार पालन के लिये नित्य जप के प्रयोजन में महामंत्र नाम निर्बन्ध या संख्या के रक्षण के लिए जप के नियम पालन करते हुए, यह सभी के लिए अवश्य ही 'जप्य' है। किन्तु जप की निर्दिष्ट संख्या का समय पूर्ण होने पर सर्वक्षण यह महामंत्र नाम ही बोलो अर्थात् उच्चारणपूर्वक कीर्तन करो। (यह श्रीमन्महाप्रभु का साक्षात् आदेश है)

कीर्तन में संख्या नियम अतिक्रम करके बोलना चाहिए- यही समझाने के लिए श्रीमन्महाप्रभु ने स्पष्टरूप से आदेश दिया है-

''सर्वक्षण बोल इथे विधि नाहि आर।''

''यह महावाक्य कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने महामंत्र को अन्य सभी विधि-निषेध मुक्त कर दिया है, यहाँ संख्या और असंख्या की कोई बात ही नहीं कही गई है''। अर्थात् केवल निज नियमित जप काल में उसका संख्यादि रखते हुए जप किया जाये। निर्दिष्ट जप समाप्त होने पर अन्य समय कोई विधि-निषेध रखने की आवश्यकता नहीं है, उस समय भी यह सर्वक्षण बोलो। जिसकी जितनी क्षमता हो, उतना समय बोलो या कीर्तन करो, यही उनके श्रीमुख का स्पष्ट निर्देश है। 'जप' और 'बोलो' ये दो शब्द दो पृथक् अर्थ सूचक हैं- यह सहज बोध्य है। 'बोलो' शब्द का सीधा अर्थ बोलकर कीर्तन करना ही है।

'हरे कृष्ण महामंत्र' नाम के विषय में केवल मात्र यही निर्देश नहीं है, उन्होंने इस 'हरे कृष्ण महामंत्र' का सर्व साधारण द्वारा खोल-करताल आदि वाद्य यंत्र के सहयोग से संकीर्तन कराया था, इसका भी प्रमाण श्रीचैतन्यचरितामृत की उक्ति से अवगत हो जाता है; श्रीमन्महाप्रभु द्वारा महामंत्र

नाम, बारम्बार जब तब जनसाधारण को उच्च संकीर्तन करने का निर्देश दिया गया था। तब उस समय भक्ति विमुख नाम महिमा से अनविज्ञ कुछ विषय में अज्ञ कतिपय पाखण्डी हिन्दुओं द्वारा काजी के निकट महाप्रभु के आचरित महामंत्र नाम कीर्तन के विरुद्ध जो अभियान किया गया था। काजी ने निज मुख से महाप्रभु को बताया, उस विषय में विस्तृत वर्णन मूल ग्रन्थ में दृष्टव्य है, नीचे उसके कुछ अंश मात्र उद्धृत किये हैं-

नागरियाके पागल कैल-सदा संकीर्तन।
रात्रे निद्रा नाहि याह करि जागरण।।

एवं

निमाई नाम छडि एषे बोलाय 'गौर हरि'।
हिन्दु धर्म नष्ट कैल कीर्तन संचरि।।
कृष्णेर कीर्तन करे नीच बारबार।
एइ पापे नवद्वीप हइवे उजार।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत १/१७/२०३-२०४)

यहाँ तक की उक्ति से यह स्पष्ट नहीं हो रहा है, कि श्रीनिमाई (श्रीमन्महाप्रभु) 'हरे कृष्ण महामंत्र' का कीर्तन करा रहे हैं, किन्तु आगे आने वाले पयार से यह स्पष्ट हो रहा है, कि श्रीमन्महाप्रभु महामंत्र का ही कीर्तन करा रहे हैं। देखिये-

हिन्दु शास्त्रे ईश्वरेर नाम 'महामंत्र' जानी।
सर्वलोक शुनिले मंत्रेर वीर्य हय हानि।।
ग्रामेर ठाकुर तुमि सबे तोमार जन।
निमाई बोलाइया तारे कराइ वर्जन।।

(श्री चैतन्यचरितामृत १/१७/२०५-२०६)

केवल नाम उच्चारण में इनके लिए विशेष कुछ बाधा नहीं थी, मंत्र उच्चारण करने से व श्रवण करने से उसकी शक्ति की हानि होती है और इससे देश का अमंगल होता है- इस अभियोग से वह जो केवल नाम ही नहीं है, मंत्र ही है और वह भी महामंत्र ही है।

यह स्पष्टतः ''ईश्वरेर नाम महामंत्र'' नामक उस कथन से स्पष्ट होता है, कि हरे कृष्णादि षोडश नाम ही 'महामंत्र' प्रसिद्ध है। उससे भिन्न अन्य किसी भी भगवन्नाम को महामंत्र शब्द द्वारा निर्देश नहीं किया गया है, यह विशेष रूप से वर्णनीय है।

इसलिये भक्ति विरोधी अज्ञ जनों के इस अभियोग से श्रीश्रीमन्महाप्रभु ने जो 'हरे कृष्ण महामंत्र' सर्व साधारण को बारम्बार संकीर्तन करने के लिए आदेश दिया था, उस विषय में कोई भी संशय नहीं रहता। यहाँ तक कि, स्वयं आचरण करके भी, उस महामंत्र-नाम का युगपत् जप्यत्व और कीर्तनीयत्व रूप विशेषरूप से प्रतिपादन किया है। जो अन्य किसी भी मंत्र के विषय में प्रयोज्य नहीं है। तदीय आचरण में नाम के कीर्तन के विषय में 'श्रीचैतन्यचरितामृत' में देख पाते हैं; जैसे-

वृन्दावन आसि प्रभु बसिया एकान्ते।
नाम संकीर्तन करे मध्याह्न पर्यन्ते।।
तृतीय प्रहरे लोक पाय दरशन।
सब उपदेश करे नाम संकीर्तन।।

(चैतन्यचरितामृत २/१८/७३-७४)

श्रीचैतन्यभागवत में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा निर्बाध नाम जप और अनुक्षण नाम उच्चारण के सम्बन्ध में निम्न उद्धृत पयार मिलता है;

ईश्वर करिया संख्या नामेर ग्रहण।
मध्याह्नादि क्रिया करिवारे हैल मन।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण बलि प्रेम सुखे।
प्रत्यक्ष हइला आसि अद्वैत सन्मुखे।।

(चैतन्यभागवत ३/१/अध्याय)

इसलिये यह महामंत्र नाम जप में संख्यापूर्वक ग्रहणीय है एवं संख्या के विचार से रहित, सब विधि-निषेध से ऊपर उठकर सर्वक्षण बोलना और कीर्तन करना भी इसकी अन्य एक महिमा और वैशिष्ट्य बोलकर समझना होगा। अंत में एक और वक्तव्य यह है, कि श्रीगौरलीला काल में उनकी अचिन्त्यनीय कृपा वैशिष्ट्य में नामापराध का विचार न रखकर नाम ग्रहण मात्र से ही तत्क्षणात् अपराध क्षमा करके प्रेमदान किया गया है।

चैतन्य-नित्यानन्दे नाहि ए सब विचार।
नाम लैते प्रेम देन, बहे अश्रुधार।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत १/८/३१)

तात्पर्य यह है, कि श्रीश्रीनिताई-चैतन्य के लीला काल में, नामापराध सम्बन्ध में कोई विचार न रहकर श्रीभगवान् के जिस किसी भी नामग्राही जन को ही उक्त नाम द्वारा तत्क्षण ही नामापराध से मुक्त करके प्रेमदान किया गया है। किन्तु (उनके अप्रकटकाल के लिए) नाम के अंगीत्व और नामापराध के सम्बन्ध में नामापराध वर्णन करने के लिए श्रीश्रीमन्महाप्रभु और श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु दोनों ने ही विशेष भाव से ही निर्देश दिया है। केवल यही नहीं, उनके प्रकट काल में चापाल-गोपाल उद्धार प्रभृति लीला के अभिनय द्वारा नामापराध वर्णन के विषय में भविष्य में जन्मे कलियुग के प्राणियों को शिक्षा भी दी है।

फिर भी महाप्रभु के प्रकट रहने के चार सौ वर्ष के उपरान्त सम्प्रदाय में कलि के प्रवेश और नामापराध सृजन के फल स्वरूप अंगी नाम को केवल उनके अंगों के साथ समान मानना ही नहीं-नाम को बहिरंग साधन रूप में भी समझा और बोला जाता है। अधिकन्तु नामापराध संघटन के विषय में सम्पूर्ण उपेक्षा करके 'निताई चैतन्य नामे नाहि ए सब विचार' इत्यादि स्वकपोल-कल्पित मतवाद को बनाकर कहते हैं, कि निताई-चैतन्य नाम लेने पर नामापराध के सम्बन्ध में किसी प्रकार की खोज-खबर रखने और चिंता करने की कोई प्रयोजन नहीं है- इसप्रकार कहने से, तो कलि-प्रेरित होकर नामापराध बढ़ाने के विषय में उत्साह प्रदान किया जा रहा है। नामापराध वर्णन के विषय में स्वयं श्रीश्रीनिताई-चैतन्य ने विशेष रूप से जो निर्देश दिए हैं, उनके ही नाम की दुहाई देकर, उन नामापराधों की ही उपेक्षा करना और कितनी दूर तक गहरा अपराध है, यह स्थिर भाव से चिंतन करने से ही समझ लिया जा सकता है।

नोट- श्रील कानुप्रिय गोस्वामी विरचित 'नाम चिन्तामणि द्वितीय किरण' (नामापराध दर्पण) ग्रंथ के पृष्ठ संख्या २९०-३०५ से उद्धृत। यह ग्रंथ 'श्रीगौरकिशोर शांतिकुंज' प्राचीन मायापुर दक्षिण नवद्वीप, नदिया से प्रकाशित है।



श्रीअनंतसंहिता में 'हरे कृष्ण महामंत्र' के उच्च्व कीर्तन के विरोधी व्यक्ति का त्याग करने का साक्षात् आदेश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।
षोडशेतानि नामानि द्वात्रिंशद वर्णाकन हि।
कलौयुगे महामंत्रः सन्मतो जीवतारणे।।
वर्जयित्वां तु नामैतद् दुर्जनैः परिकल्पितम्।
छन्दोवद्धं सुसिद्धान्त विरुद्धं नाभ्यसेत् पद्म।।
तारकं ब्रह्म नामैतद् ब्रह्मणा गुरुणा दिना।
कलिसंतरणाद्यासु श्रुतिष्वधिगतं हरेः।।
प्राप्तं श्रीब्रह्म शिष्येण श्रीनारदेन धीमता।
नामैत दुत्तमं श्रौत पारम्र्येण ब्रह्मरणः।।
उत्सृज्यैतन्महामंत्र ये त्वन्यत् कल्पितं पदम्।
महानामेति गायन्ति ते शास्त्र गुरुलंधिनः।।
तत्वविरोधसंपृक्तं तादृशं दौजनं मतम्।
सर्वथा परिहार्यं स्यादात्महितार्थिना सदा।।

अनुवाद– हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

सोलह नाम बत्तीस अक्षर स्वरूप यह कलियुग के जीवों का उद्धार करने के लिये 'महामंत्र' नाम से कहा जाता है। इस महामंत्र को यदि कोई अपने मतवाद से अन्य नाम को छन्दबद्ध करके कीर्तन करता है, तो वह सुसिद्धान्त के विरुद्ध है और वह दुर्जन व्यक्ति द्वारा कल्पना किया गया है, इसलिये उसका कभी-भी अभ्यास नहीं करना चाहिये।

यह 'तारकब्रह्म महामंत्र' नाम श्रीहरि से श्रीब्रह्मा व श्रीब्रह्मा से गुरु परम्परानुसार कलियुग के जीवों के उद्धार के लिये जगत में प्रकाशित हुआ है।

यह उत्तम नाम श्रीहरि से श्रीब्रह्मा व श्रीब्रह्मा से श्रीनारद के क्रम से गुरु परम्परा के अनुसार जगत में आया है। यदि कोई व्यक्ति इस महामंत्र नाम का परित्याग करके अन्य कोई मंत्र (नाम) को महामंत्र कहकर उसका कीर्तन करता है, उस आत्महितार्थी व्यक्ति को शास्त्र-गुरु लंघनकारी व तत्त्व विरोधी कहा जायेगा। इसलिये उस दुर्जन व्यक्ति के मत को पूर्णरूप से सदा के लिये त्याग देना ही उचित है।

श्रील कानुप्रिय गोस्वामी प्रभुपाद विरचित 'हरे कृष्ण महामंत्र जप व कीर्तन विधान' ग्रंथ के साथ ही श्रीअनंत-संहिता ग्रंथ का प्रमाण भी यहां संलग्न किया जा रहा है। पण्डित कुल मुकुटमणि श्रील हरिदासदास जी महाराज नवद्वीप निवासी ने भी अपने श्रीगौड़िय वैष्णव अभिधान नामक ग्रंथ में श्रीअनंतसंहिता का वर्णन किया है।

श्रीचैतन्यभागवत व श्रीअद्वैतप्रकाश ग्रंथों में भी श्रीअनंतसंहिता का नाम आया है। इसलिये श्रीअनंतसंहिता हमारे गौड़िय वैष्णव सम्प्रदाय का बहुमूल्य ग्रंथ है। श्रीअद्वैत-प्रकाश ग्रंथ के अनुसार श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद ने श्रील अद्वैत प्रभु को श्रीअनंतसंहिता ग्रंथ पढ़ाया था।

अब इस महामहिमामय श्रीअनंतसंहिता ग्रंथ से कुछ श्लोक प्राप्त हुये हैं। उसमें से ही ये सात श्लोक 'हरे कृष्ण महामंत्र' के उच्च्व कीर्तन के प्रमाण में दिये जा रहे हैं। जिससे कि सभी जनसाधारण का भ्रम, संदेह व संशय समाप्त हो जाये और सभी 'हरे कृष्ण महामंत्र' की सुमधुर

ध्वनि पर गायन, वादन, कीर्तन करके दिव्य आनन्द को प्राप्त करें।

जिस प्रकार से श्रील कानुप्रिय गोस्वामी ने 'हरे कृष्ण महामंत्र' के उच्च कीर्तन का विरोध करने को 'कल्पना' नामक अपराध बताया है, ठीक उसी प्रकार श्रीअनंतसंहिता में भी इसको कल्पना दोष बताया है और ऐसे कल्पित मतवाद की स्थापना करने वाले व्यक्ति का संग त्याग करने का स्पष्ट आदेश दिया है। जय राधे श्याम @32gb



दर्शन छवि निहारते गोस्वामी जी